मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 122 • वर्ष 13, अंक 7 • सितम्बर 2023 • दस रुपये • 20 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

नूंह में हुई हिंसा की सच्चाई : एक जाँच रिपोर्ट 5

क्या है बजरंग दल और मज़दूरों को इससे क्यों सावधान रहना चाहिए? 7

देशभर में नफ़रती ज़ॉम्बीज़ की फ़सल तैयार कर रहा है संघ परिवार 8

हर मोर्चे पर नाकाम मोदी सरकार, चन्द्रयान पर चढ़कर कर रही चुनाव प्रचार! 19

दंगे करने का अधिकार, माँग रहा है संघ परिवार! शामिल है मोदी सरकार!

नूंह में साम्प्रदायिक साज़िशों को अपेक्षित सफलता न मिलने से बौखलाया संघ परिवार पुलिस-प्रशासन और सशस्त्र बलों की मदद से फिर से मेवात में दंगे भड़काकर देश में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने की फ़िराक़ में

मेहनतकशो चौकस रहो, दंगाइयों की कोई चाल कामयाब न होने पाये!

सम्पादकीय अग्रलेख

नूंह में दंगे भड़काने की संघी फ़ासिस्टों की चाल को जनता की ओर से उस प्रकार का समर्थन नहीं मिला जिसकी वे उम्मीद कर रहे थे। नूंह और हरियाणा की हिन्दू मेहनतकश जनता की बहुसंख्या ने संघियों की दंगाई कोशिशों को बड़े पैमाने पर नकार दिया है। समाज का एक छोटा हिस्सा है जो केवल और केवल मुसलमानों से नफ़रत की वजह से मोदी-शाह सरकार और संघ परिवार की ऐसी चालों का समर्थन कर रहा है। यह कुल हिन्दू आबादी का भी एक बेहद छोटा हिस्सा है। स्वयं यह भी बढ़ती महँगाई और बेरोज़गारी से तंग है। लेकिन मुसलमानों से अतार्किक घृणा और राजनीतिक चेतना की कमी के कारण वह संघी फ़ासिस्ट प्रचार के प्रभाव में है। अभी हो रही सभी दंगाई पंचायतों में इस छोटी-सी अल्पसंख्या से आने वाले लोग ही शामिल हैं। व्यापक मेहनतकश आबादी ने ऐसी दंगाई साज़िशों को ख़ारिज किया है। इस आबादी में जो मुखर हैं और बोलते हैं, उन्होंने स्पष्ट तौर पर बोलकर हार के डर से बौखलायी मोदी-शाह सरकार की साम्प्रदायिक फ़ासिस्ट चालों को नकारा है। लेकिन जो बहुसंख्यक आबादी मुखर नहीं भी है, वह मोदी सरकार और संघ परिवार की दंगाई चालों से बुरी तरह से चिढ़ी हुई और नाराज़ है।

संघ परिवार के दूरदर्शी चिन्तकों को भी समझ में आ रहा है कि इस बार जनता उसके दंगाई प्रचार में उस तरह से नहीं बह रही है, जैसे पिछले 10 वर्षों के दौरान बह जाया करती थी। मोदी सरकार गोदी मीडिया का पूरा इस्तेमाल भी कर रही है और गोदी मीडिया के तमाम चैनल इस प्रकार की दंगाई साम्प्रदायिक बातें कर रहे हैं कि हमारे देश के बेहद अधूरे अर्थों में जनवादी, सेक्युलर संविधान के तहत भी उसके तमाम एंकर व पत्रकार अब तक जेल में होने चाहिए थे! लेकिन मोदी सरकार द्वारा लाये गये 'मृत काल' में क़ानून-संविधान के तहत हासिल मरे-गिरे जनवादी अधिकारों का भी ज़्यादा कुछ अर्थ रह नहीं गया है। फ़ासीवादी शक्तियों ने एक लम्बी प्रक्रिया में राज्यसत्ता का 'टेक-ओवर' करने के काम में काफ़ी प्रगति की है। हिटलर के समान भारत के फ़ासीवादी शासन को आम तौर पर कोई आपवादिक क़ानून लाने की ज़रूरत पड़े, इसकी गुंजाइश कम है। यही बात आम तौर पर इक्कीसवीं सदी के फ़ासीवाद पर लागू होती है। इसलिए राज्य के निकायों द्वारा फ़ासीवादी शक्तियों पर किसी कार्रवाई की उम्मीद नगण्य है। यही वजह है कि गोदी मीडिया के

(पेज 11 पर जारी)

भाजपा शासन में चुनाव पास आते ही सरहद पर घुसपैठ क्यों बढ़ जाती है?

• आदित्य

अगले साल देश में लोकसभा चुनाव होना है। ज़ाहिर है सारी चुनावबाज पार्टियाँ इसमें अपनी तीन-तिकड़मों में व्यस्त हो गयी हैं। बताने की ज़रूरत नहीं है कि पूँजीपतियों द्वारा भारी आर्थिक समर्थन के बूते पर भाजपा इसमें अभी तमाम दूसरे चुनावबाज पार्टियों से कहीं आगे है। एक फ़ासीवादी पार्टी होने के नाते भी भाजपा के तौर-तरीके अन्य पूँजीवादी पार्टियों से अलग हैं। उसका मुख्य काम ही है साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल कर असुरक्षा व निश्चितता से बिलबिलाये टुटपुँजिया वर्गों की अन्धी प्रतिक्रिया को मुसलमानों, ईसाइयों या दलितों के रूप में एक नकली दुश्मन दे दिया जाय और फिर दंगे-फ़साद के बूते सत्ता हासिल की जाय। वहीं यह फ़ासीवादी पार्टी इस टुटपुँजिया उभार का इस्तेमाल देश के विशेष तौर पर बड़े पूँजीपति वर्ग जैसे अडानी, अम्बानी, टाटा, बिड़ला आदि की सेवा करने में करता है। ज़ाहिर है, इस सेवा के बदले में भाजपाई नेताओं-मंत्रियों को पर्याप्त मेवा भी मिलता है।

ज़रा सोचिए, क्यों ऐसा होता है कि जैसे-जैसे चुनाव नज़दीक आता जाता है और विशेषकर भाजपा सरकार को हार का ख़तरा सताने लगता है, वैसे ही देश भर में दंगों का माहौल बनना क्यों शुरू हो जाता है? क्यों चुनाव के समय ही मन्दिर और मस्जिद के नाम पर लड़ाइयाँ शुरू हो जाती हैं? क्यों ख़बरों में ऐसा आना शुरू हो जाता है कि पाकिस्तान या चीन ने देश पर हमले शुरू कर दिये हैं? और आख़िर क्यों चुनाव आते ही देश की सीमाओं पर अचानक घुसपैठ तेज हो जाते हैं, सर्जिकल स्ट्राइक की ख़बरें आनी शुरू हो जाती हैं, जिनकी कभी कोई पुष्टि नहीं की जाती और सबूत माँगना ही देशद्रोह घोषित कर दिया जाता है?

ऊपर लिखे सवालों का जवाब बिल्कुल साफ़ है। चुनाव के समय भाजपा जैसी फ़ासीवादी पार्टी रोज़गार, महँगाई, भ्रष्टाचार, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जैसे ज़रूरी मुद्दों पर बात कर ही नहीं सकती, क्योंकि न तो इन्होंने कभी इस पर काम किया है और न ही इन मुद्दों पर काम करना इनका मक़सद रहा है। यह तो पूरे तन-मन-धन से अपने मालिकों के वर्ग यानी अम्बानी-अडानी, टाटा-बिरला आदि जैसे पूँजीपतियों की सेवा में लगे रहते हैं। अब चूँकि इनके पास असल मुद्दे होते ही नहीं जिनपर ये वोट माँग

(पेज 10 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

अपराध-सम्बन्धी क़ानूनों में बदलाव के पीछे मोदी सरकार की असल मंशा क्या है?

(पेज 20 से आगे)

और राज्य द्वारा खुले तौर पर दुरुपयोग किया जा सकता है। मसलन, नये क़ानून में धारा 195, जो आयीपीसी की धारा 153 बी के समतुल्य है, वह "भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता या सुरक्षा को क्षति पहुँचाने वाली झूठी या भ्रामक सूचना" निर्मित करने या प्रकाशित करने को दण्डनीय अपराध बनाती है। यानी सरकार की नीतियों की तर्कसंगत आलोचना लिखना भी अब दण्डनीय अपराध घोषित किया जायेगा!

यही नहीं, धारा 255 के अन्तर्गत मोदी सरकार ने इस बात के पुख्ता इन्तज़ाम भी कर दिये हैं कि **अब मजिस्ट्रेट से लेकर उच्च न्यायालयों के जज भी सरकार के ख़िलाफ़ कोई फ़ैसला देने से पहले हज़ार बार सोचें क्योंकि यदि कोई फ़ैसला "क़ानून के विपरीत" पाया गया (जिसका फ़ैसला ज़ाहिरा तौर पर ख़ुद मोदी सरकार ही करेगी!) तो ऐसे न्यायाधीशों को 7 साल की सज़ा हो सकती है!** वैसे तो अभी ही न्यायालयों से ऐसी कोई ख़ास उम्मीद बची नहीं है कि वे फ़ासीवादी मोदी सरकार के विरुद्ध आम तौर पर कोई फ़ैसला दें लेकिन जब क़ानूनी तौर पर ही इसे दण्डनीय बना दिया जायेगा तो इसकी ज़रा-सी सम्भावना को भी ख़त्म किया जा रहा है। 'मॉब लिंचिंग' और 'संगठित अपराध' (हालाँकि इससे जुड़े क़ानून भी पहले से मौजूद हैं, मसलन मकोका) की नयी धाराएँ जोड़ी तो गयी हैं, लेकिन 'नफ़रती भाषण' (हेट स्पीच) को किसी भी प्रावधान के तहत दण्डनीय नहीं बनाया गया है। ज़ाहिरा तौर पर, यदि ऐसा किया जाता तो कम से कम औपचारिक तौर पर तो संघ और भाजपा से जुड़ा सम्भवतः हर व्यक्ति ही सज़ा के घेरे में आता!

कुलमिलाकर, इन नये क़ानूनों के ज़रिये मोदी सरकार अपनी फ़ासीवादी तानाशाही को एक क़ानूनी जामा पहनाने का काम कर रही है। जन प्रतिरोध के सभी रूपों को कुचल देने की मंशा से ही ये नये जनविरोधी क़ानून तैयार किये गये हैं। साथ ही, इन नये क़ानूनी बदलावों के ज़रिये पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले अन्य निकायों जैसे कि न्यायपालिका, नौकरशाही, पुलिस, फ़ौज इत्यादि की भी क़ानूनी रास्ते से नकेल कसने की तैयारी की जा रही हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि भारतीय फ़ासीवादियों द्वारा लम्बे समय से इन सभी बुर्जुआ संस्थानों के भीतर घुसपैठ जारी थी और आज भी है, जिसके ज़रिये इनके द्वारा अपने लोग हर निकाय में व्यवस्थित तरीक़े से बैठाये भी गये हैं और इसलिए एक हद तक इन सभी निकायों का भीतर से फ़ासीवादीकरण करने में भारतीय फ़ासिस्ट सफल भी रहे हैं। हालाँकि अब क़ानूनी तौर पर भी इन संस्थानों का फ़ासीवादियों द्वारा अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल किये जाने का रास्ते साफ़ किया जा रहा है। लेकिन इन नये बदलावों का सबसे गम्भीर और बुरा प्रभाव इस देश के मज़दूरों और आम मेहनतकाश आबादी पर पड़ने वाला है इसलिए मज़दूर वर्ग को इन बदलावों के निहितार्थ समझने होंगे और अपनी लामबन्दी इसके अनुसार करनी होगी।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल के सभी पाठकों के सूचनार्थ

मज़दूर बिगुल के फेसबुक पेज (facebook.com/mazdoorbigul) को किसी विदेशी हैकर ने हैक कर लिया है और उस पर कुछ फ़ालतू पोस्ट करना भी शुरू कर दिया है। हमारी कोशिश है कि इसे जल्द से जल्द रिकवर कर लिया जाये लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ दिनों का समय लग जाता है। आपसे आग्रह है कि जब तक यह पेज फिर से हमारे नियंत्रण में नहीं आ जाता, तब तक इस पेज से आने वाली पोस्ट को इग्नोर करें। उन पर लाइक या कमेंट बिल्कुल ना करें। **फ़ेसबुक पर हमारा नया पेज यह है - facebook.com/mazdoorbigul1 (अन्त में 1 जोड़ा गया है)। आप सबसे अनुरोध है कि इस नये पेज को लाइक और फ़ॉलो करें ताकि 'मज़दूर बिगुल' की सामग्री फिर से ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुँच सके।**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए या व्हॉट्सएप करिए।

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

स्त्रियों के शोषण-उत्पीड़न-बलात्कार में लिप्त दिल्ली सरकार का महिला एवं बाल विकास विभाग! उपनिदेशक पर नाबालिग से बलात्कार का आरोप!!

● प्रियम्वदा

महिला सशक्तीकरण की दुहाई देने वाले दिल्ली सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग का स्त्री-विरोधी चरित्र पहले ही उजागर हो चुका है, और अब प्रेमोदय खाखा प्रकरण ने इनकी घिनौनी और सड़ी हुई मानसिकता को नई ऊँचाई पर ले जाने का काम किया है। महिला एवं बाल विकास विभाग के उपनिदेशक प्रेमोदय खाखा को बीते 20 अगस्त को एक नाबालिक से रेप के आरोप में पकड़ा गया है। मालूम हो कि वह बच्ची अपने पिता के निधन के बाद उनके दोस्त यानी प्रेमोदय खाखा के घर पर रह रही थी जहाँ आरोपी ने उसका कई बार बलात्कार किया। जब नाबालिग गर्भवती हो गयी तो उसने आरोपी की पत्नी को सूचित किया, जिसने इस पूरे मामले को दबा देने के मक़सद से लड़की को गर्भपात की दवाइयाँ दे दी। बीते अगस्त महीने में जब नाबालिग को एंज़ायटी अटैक हुआ और उसकी माँ ने उसे सेंट स्टीफ़ेंस अस्पताल में भर्ती कराया, तब लड़की ने परामर्श सत्र के दौरान पूरी घटना बतायी और यह मामला सामने आया।

हालाँकि इस पूरे मामले में आरोपी के ख़िलाफ़ यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण (POCSO) और अन्य धाराओं के तहत मामला दर्ज किया गया है परन्तु यह सोचने की बात है कि जिस विभाग को महिलाओं को "सशक्त" करने के लिये बनाया गया है, उसके अन्दर बलात्कारी और पितृसत्तात्मक मानसिकता के अपराधी भरे पड़े हुए हैं। इतना ही नहीं, इस प्रकरण के बाद यह खुलासा भी हुआ कि इसी प्रेमोदय खाखा के ख़िलाफ़ पहले ही कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की 4 शिकायतें दर्ज की गयीं थीं। इन शिकायतों के बावजूद यह महोदय महिला एवं बाल विकास विभाग के उपनिदेशक पद पर विराजमान रहे। आज जब इनके कच्चे-चिट्ठे खुल चुके हैं तो आम आदमी पार्टी इनसे पल्ला झाड़ने की पूरी कोशिश में लगी है। लेकिन यह कोई पहली मर्तबा नहीं है जब आम आदमी पार्टी और इसके नेता व कारकूनों के दिलो दिमाग़ में भरा पितृसत्ता का मवाद रिसकर बाहर आ गया हो। इसकी बानगी हम पहले भी देख चुके हैं। बीते साल 2022 में आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों की हड़ताल के दौरान इसी विभाग के निदेशक की कुर्सी पर विराजमान नवलेन्द्र कुमार सिंह ने हड़ताली महिलाओं को "गुण्डी और लफ़ंगी" कहा था। अपनी जायज़ माँगो के लिए लड़ रही कामगारों के लिए अपशब्द का इस्तेमाल किया था। ठीक यही भाषा दिल्ली सरकार के उपमुख्यमन्त्री मनीष सिसोदिया के भी थे जब महिलाकर्मी उनसे मिलकर अपनी माँगें ज़ाहिर करने गयी थीं। केजरीवाल सरकार का स्त्रियों के प्रति नज़रिया तो तब भी उजागर हो गया था जब 2017 और 2022 में हज़ारों की संख्या में महिलाकर्मी उनके घर के बाहर बैठी थीं और मुख्यमन्त्री महोदय कभी चुनाव प्रचार में व्यस्त थे तो कभी कान में रुई डालकर सो रहे थे। दिल्ली महिला आयोग, जिसकी महिलाओं के प्रति दिखावटी चिन्ता कभी ख़त्म होने का नाम नहीं लेती, वो 22,000 आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों के मसले पर अचानक लापता हो गया था!!

ख़ैर, इस मसले पर और महिला एवं बाल विकास विभाग के अन्दर चल रहे इन कुकृत्यों पर इनका यह दिखावटी आयोग भी कुछ नहीं कर पाता है! वैसे, यह सवाल उठना लाज़िम है कि डब्लूसीडी से लेकर इनका महिला आयोग कहीं स्त्रियों के शोषण-उत्पीड़न और बलात्कार का अड्डा तो नहीं? दिल्ली की मेहनतकश जनता के सामने अब इसका जवाब साफ़ है और इसमें ताज्जुब की भी कोई बात नहीं क्योंकि जब सियासतदान ही ऐसे कुत्सित और घिनौनी मानसिकता के हों तो समाज में स्त्री-विरोधी तत्वों को संरक्षण और बढ़ावा मिलता ही है। "साफ़-सुथरे" केजरीवाल सरकार के राज में दिल्ली यूँ ही महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित शहर नहीं है!! निश्चित ही, इसमें मोदी सरकार का भी पूरा योगदान है, क्योंकि भाजपा तो वैसे भी देश में बलात्कारियों की और बलात्कारियों को बचाने वाली पार्टी के रूप में मशहूर हो चुकी है। प्रेमोदय खाखा के इस मामले के उजागर होने के बाद से केन्द्र सरकार और उसके नेता-मन्त्रियों ने अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिये घटिया हवाबाज़ी शुरू कर दी हैं। वैसे तो इस विभाग की केन्द्रीय मन्त्री भाजपा से है और एक स्त्री भी हैं और मगर मेहनतकश स्त्रियों के मसले से इन्हें कितना लेना-देना है यह किसी से छुपा नहीं है। कठुआ, उन्नाव, हाथरस से लेकर बलात्कार के तमाम जघन्य घटनाओं में मोदी सरकार और उसके नेता-मन्त्री संलिप्त पाये जाते हैं। यह बात दिन के उजाले की तरह साफ़ है कि इस देश की मेहनतकश औरतों की ज़िन्दगियों से मोदी या केजरीवाल सरकार किसी को भी कोई मतलब नहीं है। हमें इनके "स्त्री-प्रेम" के मुखौटे को आम जनता के सामने भी तार-तार करना होगा!

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन महिला एवं बाल विकास विभाग में मौजूद ऐसे तमाम पतित तत्वों की पहचान और तुरन्त कार्रवाई व बरख़ास्तगी की माँग करती है। इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी कि ऐसे स्त्री-विरोधी और बलात्कारियों की जमात महिला एवं बाल विकास विभाग के आला अधिकारी बने बैठे हैं।

मोदी सरकार के अमृतकाल में दलितों का बर्बर उत्पीड़न चरम पर

● प्रसेन

फ़ासिस्टों के दमन-उत्पीड़न का बुलडोज़र आमतौर पर मेहनतकश जनता के सीने पर दौड़ रहा है। लेकिन अल्पसंख्यक, स्त्रियों और दलितों-आदिवासियों के दमन-उत्पीड़न में इस फ़ासीवादी सरकार ने सभी पुराने रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। दलितों द्वारा नाम के साथ सिंह आदि टाइटल लगाना, घोड़ी पर चढ़ना, मूँछ रखना, सवर्णों के बर्तन में पानी पी लेना, काम करने से मना करना, बराबरी से व्यवहार करना आदि ही सवर्णों द्वारा दलितों के अपमान और उनके बर्बर उत्पीड़न की वजह बन जा रहा है। दलित लड़कियों से बलात्कार और बलात्कार के बाद हत्या जैसे जघन्य अपराधों में बहुत तेज़ी आयी है। इसी तरह विश्वविद्यालयों/कॉलेजों में संघ परिवार के बगलबच्चा संगठन एबीवीपी के कार्यकर्ताओं द्वारा दलित प्रोफ़ेसरों के साथ मारपीट, अपमानित करने की कई घटनाएँ सामने आयी हैं।

मार्च 2023 में संसद के दूसरे बजट सत्र में इस बेशर्म सरकार के केन्द्रीय गृह राज्यमन्त्री अजय कुमार मिश्रा ने एक सवाल के जवाब में बताया कि राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की 2021 में जारी रिपोर्ट के अनुसार, चार सालों (2018 से 2021 तक) में दलितों के ख़िलाफ़ अपराधों के कम-से-कम 1,89,945 मामले दर्ज किये गए। पुराने आँकड़ों के मुताबिक वर्ष 2016 में दलितों के ख़िलाफ़ अपराध के कुल 40,801 मामले दर्ज किये गये थे, 2017 में 43,203, वर्ष 2018 में 42,793, वर्ष 2019 में 45,961 और 2020 में ये संख्या बढ़कर 50,291 हो गयी। यानी 2016 से 2020 तक दलितों के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों में 23 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई। इसी तरह दलित महिलाओं के साथ बलात्कार के मामलों में साल-दर-साल लगातार बढ़ोत्तरी हुई है। वर्ष 2016 में दलित महिलाओं के बलात्कार के 2,541 मामले दर्ज किये गये थे, वर्ष 2017 में 2,714, वर्ष 2018 में 2,936, वर्ष 2019 में 3,484 और वर्ष 2020 में 3,372 मामले दर्ज किये गये। यानी दलित महिलाओं के बलात्कार के मामलों में 2016 से 2020 तक लगभग 33 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई। हर रोज़ 9 दलित महिलाओं के बलात्कार के मामले दर्ज होते हैं।

दलितों के साथ होने वाले अपराधों की यह वह संख्या है, जो दर्ज हो पाती है। अगर इसमें उन अपराधों को भी शामिल कर लिया जाये जो पुलिस तक पहुँचने से पहले दबा दिये जाते हैं या फिर पुलिस विभाग द्वारा दबा दिये जाते हैं तो निश्चित तौर पर यह संख्या बहुत अधिक होगी। दलित विरोधी अपराधों के जो मामले दर्ज भी होते हैं, उनमें अपराधियों को सज़ा मिलने का प्रतिशत बहुत ही कम है। वर्ष 2020 में दलितों के ख़िलाफ़ अपराध के कुल 50,291 मामले दर्ज किये गये थे, जिनमें से मात्र 3,241 मामलों में ही सज़ा सुनाई गयी। यानी मात्र 6 प्रतिशत मामलों में ही सज़ा हुई। यही स्थिति दलित महिलाओं के बलात्कार के मामलों की है। वर्ष 2020 में दलित महिलाओं के बलात्कार के कुल 3,372 मामले दर्ज किये गये। जिनमें से मात्र 2,959 मामलों में ही चार्ज़शीट पेश की गयी और सिर्फ़ 225 मामलों में ही सज़ा सुनाई गयी। यानी मात्र 6 प्रतिशत मामलों में। ये सारे आँकड़े भाजपा के दलित प्रेम और रामराज्य के पाखण्ड की सच्चाई खोलकर सामने रख देते हैं।

निःसन्देह, दलितों का उत्पीड़न उन राज्यों में भी बढ़ा है जहाँ भाजपा की सरकार नहीं है (यद्यपि इन राज्यों में भी दलित उत्पीड़न के कई मामलों में भाजपाई ज़िम्मेदार थे)। लेकिन दलितों का सबसे बर्बर उत्पीड़न भाजपा शासित राज्यों में सबसे तेज़ गति से बढ़ा है। नीचे दिये गये ग्राफ़ इस बात की पुष्टि करते हैं।

दलितों के बर्बर उत्पीड़न में इस तेज़ी का सीधा कारण सत्ता में फ़ासीवादी भाजपा का होना है। हर हाल में सभी जगह फ़ासीवाद वित्तीय पूँजी का चाकर होता है। लेकिन सभी फ़ासीवादी ताक़तें यह काम बहुसंख्यक आबादी के अल्पसंख्यक आबादी के ऊपर धार्मिक, नस्लीय श्रेष्ठता आदि के नकली आभामण्डल में करती हैं। भारत के विशेष सन्दर्भ में फ़ासिस्टों के सामने एक चुनौती हमेशा रहती है। भारत में फ़ासिस्ट ताक़तें अपने जन्म से ही मुस्लिम अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यक हिन्दू आबादी का निशाना बनाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाती रही है और जिसमें फ़िलहाल उसे बड़ी सफलता भी हासिल हुई है। लेकिन संघ परिवार और भाजपा अपने गठन, अपने चरित्र में जिस ब्राह्मणवादी/सवर्णवादी मानसिकता से ग्रस्त है, वह जिस पुरातनपन्थी प्रतिक्रियावादी विचारों से ख़ुराक पाती है और लोगों के दिमाग़ में जो ज़हर भरती है उससे संघी फ़ासिस्टों को मुस्लिमों के ख़िलाफ़ हिन्दू प्रतिक्रिया को संगठित करने में काफ़ी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है। फिर चुनावी राजनीति में दलित वोटों का भी महत्व भाजपा अच्छी तरह समझती है। यही वजह है कि दलितों के ख़िलाफ़ उत्पीड़न की घटना पर मोदी कभी यह कहते हुए टेंसुए बहाता है कि - 'दलित भाइयों को मारने से पहले मुझे गोली मार दो'! कभी उनके साथ बैठकर खाना खाता है। मध्यप्रदेश में एक भाजपाई द्वारा एक आदिवासी पर पेशाब करने के बाद शिवराज सिंह चौहान को उसे बुलाकर पैर धुलने का ड्रामा करना पड़ता है। लेकिन इन सब ड्रामों के बावजूद संघ परिवार जिस ब्राह्मणवादी/सवर्णवादी

(पेज 13 पर जारी)

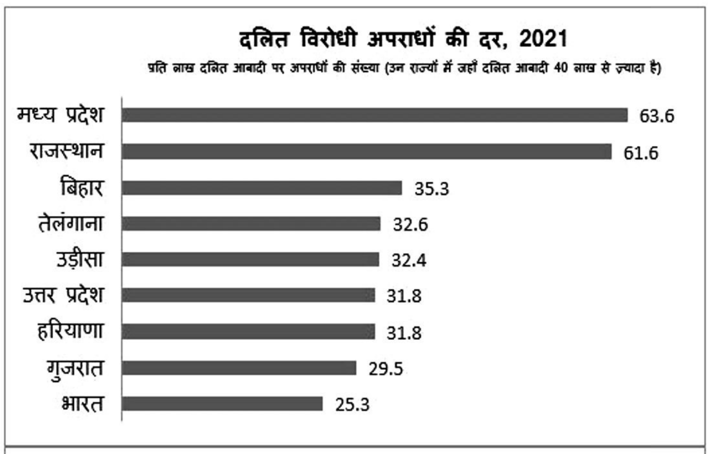

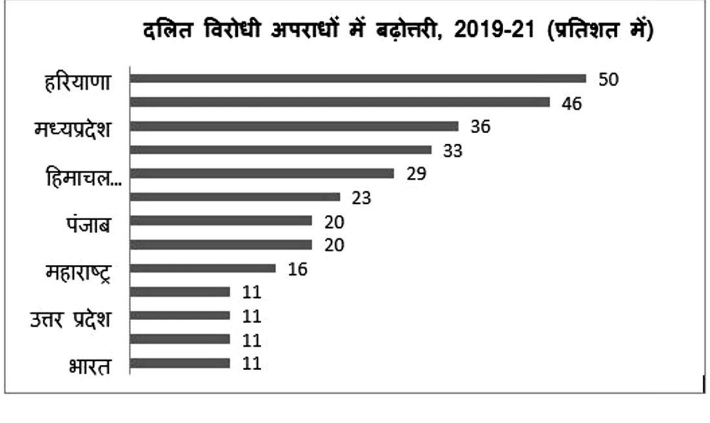

मोदी-शाह के फ़ासीवादी राज में स्त्रियों के बद से बदतर होते हालात !

● वृषाली

केन्द्र सरकार द्वारा संसद में जुलाई महीने में दिये गये एक बयान के मुताबिक़ **2019 से 2021 के बीच तीन वर्षों के दौरान देश में 13.13 लाख स्त्रियों के लापता होने की रिपोर्ट दर्ज की गयी थी।** राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, एनसीआरबी, की रिपोर्ट के अनुसार इनमें **18 वर्ष से ऊपर की 10,61,648 महिलाएँ और 2,51,430 नाबालिग लड़कियाँ** शामिल हैं। यानी, **हर चौथे मिनट में देश में एक स्त्री लापता होती है।** इनमें से कई केस हल नहीं होते हैं और अन्ततः मानव तस्करी, यौन हिंसा, जबरन विवाह और यहाँ तक कि हत्या पर समाप्त होते हैं। उक्त रिपोर्ट में शीर्ष स्थान पर मध्य प्रदेश का नाम है जहाँ इन तीन वर्षों के दौरान 1,60,180 महिलाएँ व 38,234 लड़कियाँ लापता हुई हैं। ग़ौरतलब है कि यहाँ भाजपा की शवराजसिंह चौहान की सरकार है। सूची में दूसरे स्थान पर महाराष्ट्र है जहाँ 1,78,400 महिलाएँ और 13,033 लड़कियाँ ग़ायब हुई हैं। यहाँ भी जोड़-तोड़ और ख़रीद-फ़रोख़्त के ज़रिये भाजपा ने सरकार बना रखी है। तीसरा स्थान ओड़ीसा का है जहाँ 70,222 महिलाएँ व 16,649 लड़कियाँ इन तीन वर्षों में ग़ायब हुई हैं। केन्द्र शासित प्रदेशों में दिल्ली इस सूची में अव्वल है। इन तीन वर्षों के दौरान दिल्ली से 61,054 महिलाएँ और 22,919 लड़कियाँ ग़ायब हैं। जम्मू और कश्मीर में यही संख्या क्रमशः 8,617 और 1,148 है।

यह आँकड़े निश्चित तौर पर भयंकर हैं लेकिन अप्रत्याशित नहीं। पिछले ही वर्ष जब प्रधानमन्त्री महोदय लाल किले की प्राचीर से टेलीप्रॉम्प्टर से पढ़-पढ़कर नारी सुरक्षा व सम्मान पर लफ़्फ़ाज़ियाँ कर रहे थे, तो उसी समय बिल्किस बानो के बलात्कार और उनके परिजनों की हत्या के जुर्म की सज़ा काट रहे 11 आरोपी बरी किये जा रहे थे। इतना ही नहीं, भाजपा-आरएसएस के नेता इन बलात्कारियों और हत्यारों की रिहाई का जश्न मनाते हुए फूल-मालाओं से उनका अभिनन्दन कर रहे थे। **जिस पार्टी के लिए बलात्कार विरोधियों पर विजय का एक हथियार है, उनके नेता का स्त्री सुरक्षा व सम्मान पर बात करना ढोंग नहीं है तो और क्या है?** 2014 में सत्ता में आने से पहले, और उसके बाद भी प्रधानमन्त्री महोदय ने जुमलों की बरसात कर दी है। बतौर प्रधानमन्त्री 2014 में लाल किले से दिये अपने पहले भाषण में ही उन्होंने कहा था कि बलात्कार की घटनाओं के बारे में सुनकर हमारा सर शर्म से झुक जाता है! अन्य जुमलों की ही तरह स्त्री सुरक्षा के ढोंग का भी वही हश्र हुआ है। अब भाजपा को चाहिए की अपनी सत्ता के 9 साल पूरे होने के बाद ब्रजभूषण, कुलदीप सिंह सेंगर, चिन्मयानन्द, साक्षी महाराज जैसों को स्त्री (अ)सुरक्षा का ब्राण्ड एम्बेसडर बना दिया जाये! देश की अच्छी-ख़ासी आबादी इस समय भाजपाइयों से बेटी बचाने में लगी हुई है। यहाँ तक कि भाजपाइयों ने देश की स्त्री खिलाडियों तक को नहीं छोड़ा है, बाकी मेहनतकश वर्ग से आने वाली स्त्रियों की सुरक्षा की तो बात ही क्या की जाय!

स्त्री सुरक्षा से जुड़े अन्य महत्वपूर्ण आँकड़ों पर भी नज़र डालते हैं –

एसोसिएशन फ़ॉर डेमोक्रेटिक रिफ़ॉर्म्स की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान लोकसभा में क़रीब 43 प्रतिशत सांसदों के विरुद्ध स्त्री-विरोधी अपराधों सहित तमाम तरह के आपराधिक आरोप हैं। **इनमें सबसे बड़ी संख्या भाजपा के सांसदों की है जिनमें से 30 प्रतिशत के विरुद्ध बलात्कार, हत्या, अपहरण जैसे गम्भीर स्त्री-विरोधी अपराधों के आरोप हैं।**

एनसीआरबी की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2021 में 60 लाख आपराधिक मामले दर्ज किये गये। इनमें 4,28,278 मामले स्त्री विरोधी अपराध के थे। **वर्ष 2016 से इन मामलों में 26.35% की बढ़ोत्तरी हुई है।**

इस मामले में वर्ष 2021 में उत्तर प्रदेश में चल रहे "रामराज्य" में 56,000 घटनाएँ दर्ज की गयीं थीं।

2021 में स्त्रियों के अपहरण के 76,263 मामले दर्ज किये गये थे (2016 में यह संख्या 66,544 थी)। अपहरण के इनमें से 28,222 मामले में शादी का दबाव बनाने के लिए किये गये थे।

घरेलू हिंसा के मामले में साल 2021 में 137,956 फ़ोन कॉल दर्ज किये गये थे, यानी हर चार मिनट पर एक मामला।

दहेज उत्पीड़न और हत्या के 6,795 मामले दर्ज किये गये थे, यानी हर 77 मिनट पर एक हत्या।

यह आँकड़े केवल सतही स्थिति पेश करते हैं। एक जाँच के अनुसार बलात्कार की 85% घटनाएँ रिपोर्ट ही नहीं की जाती हैं। इनमें यदि वैवाहिक बलात्कार की घटनाओं को भी शामिल किया जाये तो यही आँकड़ा 99.1% हो जाता है। लापता हुई स्त्रियों के मामले में भी सभी मसले दर्ज नहीं किये जाते हैं। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार 2017 से 2021 के पाँच वर्षों के दौरान 37 राज्य व केन्द्र शासित प्रदेशों में से केवल 18 में 50% से ज़्यादा मामलों में लापता हुई स्त्रियों का पता लगाया गया।

यह जाने बिना कि आज बढ़ते स्त्री विरोधी अपराधों का कारण क्या है, हम इस भयंकर परिस्थिति को बदल पाने में सक्षम नहीं हो पायेंगे। स्त्रियों का उत्पीड़न और पितृसत्ता का इतिहास वर्ग समाज और निजी सम्पत्ति की उत्पत्ति के साथ जुड़ा हुआ है। पूँजीवादी समाज के मौजूदा आर्थिक-सामाजिक ढाँचे ने पितृसत्ता को सहयोजित कर लिया है। मुनाफे पर टिकी इस व्यवस्था के लिए स्त्रियों का शरीर और यौन सम्बन्ध भी खरीदे और बेचे जाने वाला माल बन चुका है। आज अश्लीलता भी धन्धा है। फ़िल्मों, विज्ञापनों, गानों से लेकर सोशल मीडिया के तमाम माध्यमों पर गलाज़त भरी फूहड़ता परोसी जा रही है। मज़दूरों की और आम मेहनतकश युवाओं की एक अच्छी-ख़ासी जमात को भी यह कचरा अफ़ीम की तरह रोज़ स्मार्ट फोनों आदि के ज़रिये दिया जा रहा है। **शुचिता और संस्कार का ढोंग करने वाली फ़ासीवादी भाजपा के राज ने इस पतनशील और प्रतिक्रियावादी मानसिकता और मज़बूत किया है। बलात्कारियों और हत्यारों को संरक्षण देने वाली पार्टी की सत्ता हमें स्त्री विरोधी अपराध के आँकड़ों के अम्बार के अलावा और दे भी क्या सकती है?! भाजपा के गुरू गोलवलकर का मानना था कि औरतें बच्चा पैदा करने का यन्त्र होती हैं; इनके माफ़ीवीर सावरकर का मानना था कि बलात्कार का राजनीतिक हिंसा के उपकरण के तौर पर इस्तेमाल किया जाना चाहिए। एक ऐसी पार्टी से देश की औरतें क्या उम्मीद कर सकती हैं? एक ऐसी पार्टी चिन्मयानन्द, कुलदीप सेंगर, ब्रजभूषण, साक्षी महाराज जैसे बलात्कारी पैदा करती है, आसाराम और डेरा सच्चा सौदा के राम रहीम जैसे बलात्कारियों को बचाती है, बिल्किस बानो के परिवार के हत्यारों और उसके बलात्कारियों को जेल से रिहा करती है, तो न तो यह इत्तेफ़ाक का मसला है और न ही ताज्जुब का। भाजपा जैसी स्त्री-विरोधी पार्टी यह नहीं करेगी तो और क्या करेगी?**

आपस में नहीं सबके रोज़गार की गारण्टी के लिए लड़ो !

● अविनाश

अभी हाल ही में बीटीसी-बीएड विवाद में सर्वोच्च न्यायालय का फ़ैसला आया जिसके बाद यह मुद्दा सुलझने की जगह और उलझता हुआ नज़र आ रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने राजस्थान हाईकोर्ट के फ़ैसले को बरकरार रखते हुए प्राथमिक अध्यापक (PRT) के लिए बीएड की योग्यता को समाप्त कर दिया है। फ़ैसले के बाद छात्र समुदाय में दो फाड़ हो गया हैं। जहाँ इसके ख़िलाफ़ देश के विभिन्न हिस्सों में बीएड अभ्यर्थी सोशल मीडिया से लेकर सड़कों पर उतरकर प्रतिरोध कर रहे हैं। वहीं दूसरी ओर बीटीसी अभ्यर्थी इस फ़ैसले को जीत के तौर पर ले रहे हैं और जश्न मना रहे हैं। इस पूरी प्रक्रिया में रोज़गार गारण्टी का महत्वपूर्ण सवाल नेपथ्य में धकेल दिया गया है।

बीटीसी-बीएड विवाद क्या है?

देश में शिक्षक भर्ती के लिए योग्यता का निर्धारण राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) नामक संस्था करती है। परिषद ने 28 जून 2018 में एक अधिसूचना (Notification) जारी कर प्राथमिक शिक्षकों की नियुक्ति के लिए बीएड अभ्यार्थियों को योग्य करार दिया था। इस अधिसूचना के बाद राजस्थान सरकार द्वारा शिक्षक पात्रता परीक्षा के लिए अधिसूचना जारी की गयी जिसमें बीएड अभ्यर्थियों को प्राथमिक शिक्षक बनने के लिए अयोग्य माना गया। इन्हीं दो अधिसूचनाओं के बाद इस विवाद ने ज़ोर पकड़ा। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के फ़ैसले को राजस्थान हाईकोर्ट में चुनौती दी गयी। दूसरी तरफ़ डिप्लोमा इन एलिमेंट्री एजुकेशन (D.El. ED) के अभ्यर्थियों ने भी बीएड डिग्री धारकों की प्राथमिक शिक्षक के पद पर भर्ती को चुनौती दी। इस पूरे मामले में राजस्थान सरकार डीएलएड और बीटीसी अभ्यर्थियों के साथ खड़ी रही। 25 नवम्बर 2021 को हाईकोर्ट ने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिसूचना को ख़ारिज कर बीएड अभ्यर्थियों को प्राथमिक शिक्षक के लिए अयोग्य घोषित कर दिया। इसके बाद राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने राजस्थान हाईकोर्ट के फ़ैसले के ख़िलाफ़ सर्वोच्च न्यायालय में अपील की।

ध्यान रहे कि इस पूरी प्रक्रिया के दौरान विभिन्न राज्यों में शिक्षक भर्ती प्रक्रिया चलती रही और हजारों कि संख्या में बीएड अभ्यर्थी प्राथमिक शिक्षक बने। अब अचानक आये इस फ़ैसले के बाद इनका भविष्य क्या होगा यह भी अभी अँधेरे में है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फ़ैसले में अनुच्छेद 21A का हवाला देते हुये कहा कि "शिक्षा के मौलिक अधिकार में मुफ़्त के साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा भी शामिल है। इसके बिना शिक्षा का कोई मतलब नहीं है। बीएड अभ्यर्थियों में कक्षा 1 से 5 तक के बच्चों को पढ़ाने के लिए जरूरी कुशलता और पहुँच नहीं है। वे बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नहीं दे पायेंगे इसलिए वे इसके लिए अयोग्य माने जायेंगे।"

रोज़गार गारण्टी के लिए लड़ो !

आपस में लड़ने से पहले इस बात पर ध्यान देने कि ज़रूरत है कि फ़ैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने मुफ़्त और गुणवततापूर्ण शिक्षा की बात तो की है लेकिन ये कैसे हासिल किया जायेगा यह नहीं बताया। आज शिक्षा का बाज़ारीकरण जोरों-शोरों से हो रहा है। शिक्षकों के पदों को लगातार घटाया जा रहा है। नयी शिक्षा नीति-2020 भेदभावपूर्ण दोहरी शिक्षा प्रणाली के लिए ज़िम्मेदार महँगे निजी स्कूलों के शोषणकारी जाल को न सिर्फ़ बनाये रखता है बल्कि उसे और ज्यादा मजबूत बनाता है। शिक्षा को सबके लिए अनिवार्य और निःशुल्क करने की जगह पीपीपी (पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप, यानी पब्लिक का पैसा, प्राइवेट का मुनाफ़ा) मॉडल के तहत इसे भी मुनाफ़े के मातहत कर दिया गया है। जहाँ पुरानी शिक्षा नीति में विद्यालयों की संख्या पहुँच के हिसाब से तय किये जाने का प्रावधान था उसे नयी शिक्षा नीति में बच्चों की संख्या के हिसाब से कर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, 50 से कम छात्रों वाले सरकारी स्कूलों का विलय करने या बन्द करने की भी सिफ़ारिश करती है। इसका असर भी दिखना शुरू हो चुका है। 2020 में भाजपा की डबल इंजन सरकार ने उड़ीसा में कम नामांकन वाले 11517 विद्यालयों के विलय की पहल की थी। इसी प्रकार 2021 में हरियाणा सरकार ने 743 प्राथमिक और 314 उच्च प्राथमिक विद्ययालयों को बन्द करने के लिए हरी झण्डी दिखा दिया था। कमोबेश यही स्थिति देश के अन्य राज्यों की भी है। इतना ही नहीं इस शिक्षा नीति के मुताबिक़ 3-6 साल के बच्चों को 'अर्ली चाइल्डहुड केयर एण्ड एजुकेशन' दी जायेगी लेकिन इसके लिए नियमित अध्यापकों की भर्ती नहीं की जायेगी बल्कि इन्हें आँगनबाड़ी केन्द्रों और स्वयंसेवकों के भरोसे चलाया जायेगा।

शिक्षा मन्त्रालय के स्कूली शिक्षा और साक्षारता विभाग के मुताबिक़ देश भर में 10 लाख 32 हज़ार से ज़्यादा संचालित होने वाले विद्यालयों में से लगभग 68 फ़ीसदी सरकारों द्वारा संचालित हो रहे हैं। वहीं दूसरी ओर देश भर में सरकारी शिक्षकों की सख्या कुल शिक्षकों की संख्या का केवल 50 फ़ीसदी है। अगर सर्वोच्च न्यायालय सचमुच निःशुल्क और गुणवततापूर्ण शिक्षा के लिए चिन्तित है तो इसके लिए सबसे पहले निजी विद्यालयों की लूट पर रोक लगाने की ज़रूरत है। आज की तारीख में संचालित निजी विद्यालयों के राष्ट्रीयकरण और शिक्षकों के पुराने मानको के मुताबिक़ खाली पड़े पदों पर भर्ती करने भर से लगभग 39 लाख शिक्षकों की ज़रूरत होगी। इसके अलावा प्राथमिक शिक्षकों से लिए जाने वाले अन्य कामों पर रोक लगाई जाय और इसके जगह पर भर्तियाँ की जाय तो इस प्रक्रिया में भी लाखों पद सृजित होंगे। लेकिन सच्चाई यह है कि मुफ़्त और गुणवततापूर्ण शिक्षा केवल लफ़्फ़ाज़ी है और इसकी आड़ में बेरोज़गारी की मार झेल रहे छात्रों-नौजवानों को आपस में उलझा कर सबके लिए रोज़गार गारण्टी के सवाल को नेपथ्य में धकेला जा रहा है।

अब उपरोक्त आँकड़ों की रोशनी में सोचिए! जब सरकारी प्राथमिक विद्यालय रहेंगे ही नहीं तो क्या सारे बीटीसी वालों को नौकरी दी जा सकती है? या अगर बीएड अभ्यर्थियों को योग्य मान भी लिया जाय तो सभी को रोज़गार दिया जा सकता है? दरअसल आज नौकरियाँ ही तेजी से सिमटती जा रही है। निजीकरण छात्रों-नौजवानों के भविष्य पर भारी पड़ता जा रहा है। रेलवे, बिजली, कोल, संचार आदि सभी विभागों को तेज़ी से धनपशुओं के हवाले किया जा रहा है। अगर इस स्थिति के ख़िलाफ़ कोई देशव्यापी जुझारू आन्दोलन नहीं खड़ा होगा तो यह स्थिति और ख़राब होने वाली है। **इसलिए ज़रूरी है कि आपस में लड़ने की जगह रोज़गार गारण्टी की लड़ाई के लिए कमर कसी जाये।**

नूंह में हुई हिंसा की सच्चाई : एक जाँच रिपोर्ट

● भारत

बीते 19-20-21 तारीख़ को **बिगुल मज़दूर दस्ता** की टीम कुछ अन्य जन संगठनों व बुद्धिजीवियों के साथ नूंह में जाँच-पड़ताल के लिए गयी। इस दौरान टीम ने अलग-अलग गाँवों का दौरा किया और वहाँ हुई हिंसा के पीछे की सच्चाई पता और मौजूदा स्थिति की पड़ताल की। 31 तारीख़ की घटना और उसके बाद के हालात को जानने से पहले नज़र डालते हैं, वहाँ की पृष्ठभूमि पर।

मेव-बहुल इलाक़े को मेवात क्षेत्र कहा जाता है। मेव जाति के लोग तकरीबन 1000 साल से इस इलाक़े में बसे हुए हैं। मेवात का इलाक़ा राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में फैला हुआ है। हरियाणा के हिस्से वाले मेव बहुल इलाक़े को 2005 में हरियाणा सरकार ने मेवात जिला का दर्जा दिया, जोकि पूर्व के गुडगाँव और फ़रीदाबाद जिले के मेव बहुल इलाक़ों को मिलाकर बनाया गया है।

मेवात जिले की जनसंख्या व आर्थिक स्थिति

2011 की जनगणना के मुताबिक मेवात जिले की कुल जनसंख्या 10,89,263 है, जिसमें 88.5 फ़ीसदी गाँवों में रहते हैं। 2023 में नूंह की अनुमानित जनसंख्या 14,21,933 है। धार्मिक रूप से मेवात मुस्लिम बहुल जिला है। हरियाणा में मेव जाति को पिछड़े वर्ग का दर्जा दिया गया है। भारत सरकार के अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय द्वारा करवाये गये अध्ययन के मुताबिक मेवात जिले की कुल जनसंख्या का 70.4 फ़ीसदी मुस्लिम है, जिसमें कुल मुस्लिम आबादी का 74.3 फ़ीसदी हिस्सा देहात में बसा हुआ है। मेवात जिला बनने से पहले यह क्षेत्र मुख्यतः गुडगाँव क्षेत्र में आता था, जिसकी 61.82 फ़ीसदी जनसंख्या हिन्दू थी और मेव सहित मुस्लमानों की आबादी 23.2 फ़ीसदी थी। 2005 में बना यह नया जिला मुस्लिम बहुल हो गया। संघ, विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल व शिव सेना ने नया जिला बनाये जाने का विरोध किया था। मेवात जिला बनते ही संघ परिवार ने इसे साम्प्रदायिक रंग में रंगने की तैयारियां शुरू कर दी थी। मेवात जिले में कुल आबादी का 40 फ़ीसदी ही काम-धंधे में लगा हुआ है, जिसमें से लगभग 60 फ़ीसदी का मुख्य धंधा खेती है। इसमें से 15.4 फ़ीसदी खेतिहर मज़दूर के रूप में काम करते हैं। मात्र 2 फ़ीसदी लोग घरेलू उद्योगों में लगे हैं और बाक़ी के 38.27 फ़ीसदी डेयरी, खनन, ट्रांसपोर्ट, कंस्ट्रक्शन जैसे अन्य काम करते हैं। मेवात में ज़मीन का मालिकाना मुख्यतः मेवों के पास है। जहां मेवों में कुलक, धनी किसान क्रमशः लगभग 2.25 फ़ीसदी व 7.38 फ़ीसदी है, वहीं हिन्दुओं में धनी किसान मात्र 0.46 फ़ीसदी हैं और कुल मिलाकर धनी किसानों का हिस्सा 2.04 फ़ीसदी हैं। 41.31 फ़ीसदी मेव भूमिहीन है, जबकि हिन्दुओं में भूमिहीनों की संख्या 77.61 फ़ीसदी है। सियासी तौर पर, यहाँ के ग्रामीण इलाक़े में धनी किसानों का ही दबदबा है।

31 तारीख़ की घटना की पृष्ठभूमि

नूंह के नलहड़ गाँव में एक शिव मन्दिर है। कई सालों से इलाक़े के लोग ही, जो कि अधिकतम मुस्लिम हैं, इस मन्दिर को सम्भाल रहे हैं। लोग बताते हैं कि 1992 में बाबरी मस्जिद गिरने के बाद हुए दंगों के बाद भी गाँव के लोगों ने है, मन्दिर की रक्षा की। बीते 20 वर्षों में मन्दिर का नवनिर्माण किया गया और सावन के महीने में आस-पास के लोग वहाँ जाने लगे। विश्व हिन्दू परिषद द्वारा पिछले तीन वर्षों से ही वहाँ बृजमंडल यात्रा निकालने की शुरुआत हुई। पिछले वर्ष भी वीएचपी ने वहाँ दंगा करने की कोशिश की और मन्दिर के पास मौजूद मज़ार को तोड़ दिया। पर गाँव के दोनों धर्मों के लोगों ने आपसी माहौल को ख़राब नहीं होने दिया।

31 जुलाई की सोमवार को नूंह के नल्हड़ मंदिर से विश्व हिंदू परिषद और मातृशक्ति दुर्गावाहिनी की तरफ़ से एक कलश यात्रा फिरोज़पुर झिरका की तरफ़ रवाना हुई थी, जैसे ही वह यात्रा तिरंगा पार्क के पास पहुँची वहाँ एकसमुदाय के लोग पहले से मौजूद थे। उनके आमने-सामने आते ही दोनों गुटों में टकराव हुआ और इसके बाद आगज़नी शुरू हुई जिसमें कई गाड़ियों को आग के हवाले कर दिया गया। पथराव में दो होम गार्ड गुरसेवक और नीरज और तीन अन्य व्यक्ति की मौत हो गयी और दस पुलिसकर्मी गम्भीर रूप से घायल हो गये। कई लोगों ने बताया कि यात्रा में करीब 4-5 हज़ार लोग थे, सभी बाहर से आये थे और तलवार-डंडे आदि से लैस थे। कलश यात्रा में ढेरों नक़ाबपोश लोग भी आये थे जिन्होंने पहले दंगे की शुरूआत की। ज़ाहिर है, संघ परिवार द्वारा यह यात्रा योजनाबद्ध तरीके से दंगा और साम्प्रदायिक तनाव भड़काने के लिए निकाली गयी थी।

राज्य द्वारा दमन की शुरुआत

इस घटना के बाद 1 अगस्त की सुबह से ही नूंह के अलग अलग गाँवों में गिरफ़्तारियों का सिलसिला शुरू हो गया। नूंह में हुई हिंसा में अब तक 142 एफआयीआर दर्ज की गयी है। इसके साथ ही हिंसा में तथाकथित तौर पर लिप्त अब तक 312 लोगों की गिरफ़्तारी हुई है। जिले में मुरादबास गाँव से ही अकेले 22 लोगों को गिरफ़्तार किया गया जिसमें कई नाबालिग भी शामिल थे।

राजदा (उम्र 22) बताती हैं कि इनके पिता को जिनका हाकिम (उम्र 60) नाम है, उन्हें 1 अगस्त को सुबह 4:00 बजे पुलिस द्वारा घर में ज़बरदस्ती घुसकर गिरफ़्तार कर लिया गया। राजदा के अलावा परिवार में 6 लोग और हैं। घर का गुज़ारा थोड़ा-बहुत खेती का काम करके और दूध बेचकर चलता है। राजदा बताती हैं कि उनके पिता को 19 अगस्त तक कोर्ट के सामने पेश नहीं किया गया था। 1 अगस्त की सुबह उनके घर के आस पास में 50-60 पुलिस वाले आये, लोगों से धक्का-मुक्की की और मारपीट करते हुए कई लोगों को पकड़ कर ले गये। उन्होंने महिलाओं से भी बदतमीज़ी की और उनके साथ कोई महिला पुलिस भी नहीं थी। राजदा को यह तक नहीं पता कि उनके पिता कहाँ बन्द हैं।

इस दौरान उन नाबालिग बच्चों ने भी अपनी आपबीती सुनाई जिन्हें पुलिस ने जबरन उठा लिया था। इसी प्रकार से ऊटका, पलड़ी, नलहड़ और कई इलाक़ों से गिरफ़्तारियाँ हुई। गिरफ़्तार हुए लोगों में ज़्यादातर मुस्लिम हैं। जिन्हें पकड़ा गया उसमें बहुत से लोगों के पास वकील तक करने के पैसे नहीं हैं, न ही सरकार की तरफ़ से उन्हें वकील मुहैया कराया जा रहा है। यानी, दंगा फैलाने का काम योजनाबद्ध तरीके से करने के लिए प्रशासन द्वारा बजरंग दल और विश्व हिन्दू परिषद को इजाज़त दी गयी लेकिन जब वहाँ के बाशिन्दों ने इन प्रयासों के ख़िलाफ़ बचाव और कार्रवाई की, तो फिर पुलिस प्रशासन व खट्टर सरकार ने उनके ख़िलाफ़ ही कार्रवाई शुरू कर दी।

बुलडोज़र राज

इसके बाद सरकार द्वारा पूरे इलाक़े में घरों को ज़मींदोज़ करने की शुरुआत हुई। सरकार द्वारा प्रस्तुत आँकडों के मुताबिक 443 मकान ध्वस्त किये गए, जिनमें से 162 स्थायी थे और शेष 281 अस्थायी थे। विध्वंस अभियान से प्रभावित व्यक्तियों की संख्या 354 थी, जिनमें से 71 हिन्दू और 283 मुस्लिम थे। फिरोजपुर झिरका के पास दूध की घाटी इलाक़ा है, जहाँ मेहनतकश आबादी रहती है, जो बेलदारी से लेकर खेतिहर मज़दूरी का काम करती है। उस पूरे इलाक़े में ही क़रीब 150 घरों को सरकार द्वारा बिना कोई नोटिस दिये तोड़ दिया गया। न ही लोगों के पुनर्वास का इन्तज़ाम किया गया। आज भी लोग वहाँ खुले आसमान के नीचे सोने के लिए मज़बूर हैं। इस जगह के अलावा नगीना, नलहड़, खेड़ा और नूंह शहर में भी दुकानों और घरों को तोड़ा गया।

नूंह में हिन्दुओं की स्थिति

संघ द्वारा ज़ोर शोर से प्रचार किया जाता है कि मेवात इलाक़े में हिन्दू ख़तरे में है, उनका धर्म परिवर्तन किया जा रहा है या तमाम इस तरह की अफ़वाहें उड़ायी जाती है। सच्चाई इसके उलट है। जिन भी गाँवों में टीम गयी, हर जगह हिन्दू आबादी ने बताया कि वहाँ उन्हें धर्म के आधार पर कोई समस्या नहीं है, बल्कि सब लोग साथ लम्बे समय से मिलकर रह रहे हैं। उन्होंने बजरंग दल वालों पर ही आरोप लगाया कि यही लोग माहौल ख़राब करना चाहते हैं। यह बात बाद के घटनाक्रम के बाद पुष्ट भी हो रही है। नूंह में साम्प्रदायिक तनाव व दंगे भड़काने के लगातार जारी प्रयासों में बजरंग दल व विहिप को इलाक़े के हिन्दुओं से कोई समर्थन नहीं मिल रहा है। हरियाणा में भी जो इन गुण्डावाहिनिहियों के सदस्य हैं, वे ही इनकी साम्प्रदायिक पंचायतों में आ रहे हैं। व्यापक मेव आबादी अपनी एकजुटता बनाये हुए है और हाल ही में राजस्थान में हुई एकजुटता पंचायत में जुटी हज़ारों की भीड़ ने इसे साबित भी कर दिया।

शान्ता 50 वर्ष से मुरादबास गाँव में रह रही हैं। यह हिन्दू परिवार है। वह बताती हैं हिन्दू-मुस्लिम का झगड़ा हमारे गाँव में नहीं है और जिन्हें पुलिस पकड़कर ले गयी है, उनका कोई अपराध नहीं है। वे लोग तो उस समय घरों पर ही थे जब दंगा हो रहा था। शान्ता ने कहा कि बिट्टू बजरंगी जैसे लोगों को पकड़ो जो अनाप-शनाप बोल रहे थे।

घनश्याम (उम्र 27) जवाहर नवोदय विद्यालय में सिक्योरिटी गार्ड का काम करते हैं। इन्होंने बताया जब गाँव में सब लोग सो रहे थे, तब पुलिस द्वारा छापा मारा गया। जो कार्रवाई की जा रही है वह जायज़ नहीं है। 84 कोस की यात्रा भी निकाली जाती है और यह शान्ति से जारी है, लेकिन इसके नाम पर दंगे करना ग़लत

(पेज 6 पर जारी)

दिल्ली में पानी की समस्या से जूझती जनता

● अदिति

एक तरफ़ देश जहाँ चाँद पर पानी ढूँढ रहा है, वहीं देश के कई इलाक़ों में मेहनतकश जनता अभी पृथ्वी पर ही पीने योग्य पानी ढूँढ रही है।

इसी का एक उदाहरण है देश की राजधानी दिल्ली में पानी की समस्या। केजरीवाल साहब चुनाव में आने से पहले घोषणा कर रहे थे, हर घर में 700 लीटर मुफ़्त पानी पहुँचाया जायेगा। लेकिन तमाम वायदों की तरह केजरीवाल के इस वायदे में भी जनता को निराशा ही हासिल हुई है। आलम यह है कि दिल्ली के लोगों को पानी के लिए रातभर पहरा देना पड़ता है। उत्तर-पश्चिमी दिल्ली के समयपुर बादली के पास में सूरज पार्क इलाक़े में लोग रात 3 बजे से ही पानी भरने के लिये उठे रहते है। यही हालात तमाम मज़दूर इलाक़ों का है। इसी के साथ शाहाबाद-डेरी इलाक़े में भी यही हाल है। लोगों को पानी की पर्याप्त आपूर्ति नहीं दी जा रही। आज भी लोगों को पानी के लिए पानी के टैंकर पर निर्भर रहना पड़ रहा है। इसी इलाक़े के आस-पास रहने वाली धनी व उच्च मध्यवर्ग की आबादी को यह दिक्कत नहीं आती। उनके पास पानी का कनेक्शन है, सुबह-शाम पानी आता है और उसके अलावा जब ज़रूरत होती है तो वह सबमर्सिबल मोटर के ज़रिये भूजल का दोहन कर लेते हैं।

एक तरफ़ एक दिन की बारिश में देश की राजधानी जलमग्न हो जाती है, दूसरी तरफ़ दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों में लोग पीने के पानी को तरसते रहते हैं। दिल्ली जल बोर्ड जनसंख्या को समस्या बताकर अपना पल्ला झाड़ लेता है। दिल्ली में यमुना नदी ख़तरे के निशान के ऊपर बह रही होती है, लेकिन लोगों के लिए पानी की आपूर्ति नहीं होती।

दिल्ली में मुख्यतः तीन वॉटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट हैं : वज़ीराबाद, चन्द्रावल और ओखला। ये तीनों वॉटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट दिल्ली जल बोर्ड के अधीन संचालित हैं। जुलाई में ये तीनों ही प्लाण्ट बन्द पड़े थे, जिसके पीछे कारण बताया गया यमुना का जल स्तर बढ़ना। इन वॉटर ट्रीटमेंट प्लाण्ट से यमुना से पानी लेकर उसे साफ़ करके आगे सप्लाई किया जाता था, ऐसे में जुलाई में यमुना में बाढ़ जैसी स्थिति थी तो ये प्लाण्ट्स यमुना से पानी नहीं ले रहे थे जिसका कारण है कि बाढ़ के पानी में गाद, पत्ते और अन्य कचरा आ रहा था,जिसके कारण प्लाण्ट्स की मशीन काम नहीं कर रही थी। तकनोलॉजी इस समस्या का भी समाधान कर सकती है, लेकिन जब समस्या जनता की हो, तो समस्याओं के समाधान में पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करने वाली सरकार की कोई दिलचस्पी नहीं होती।

राजधानी के बड़े हिस्से में पीने के पानी की आपूर्ति करने वाले वॉटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट्स में स्वच्छता की स्थिति दयनीय है। वज़ीराबाद बैराज के पीछे जलाशय के तालाब की सफाई में दिल्ली जल बोर्ड ने लापरवाही बरती है, जो वज़ीराबाद और चन्द्रावल जल उपचार संयन्त्रों को पानी की आपूर्ति करता है। इसके कारण दिल्ली में 9 लाख मिलियन गैलन से अधिक पानी बर्बाद हो गया क्योंकि तालाब से गाद नहीं निकाली गयी।

वॉटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट्स और तालाब क्षेत्र की गम्भीर उपेक्षा की गयी, जिसके परिणामस्वरूप पानी की भयंकर कमी हो रही है। साथ ही प्लाण्ट्स में कचरे से भरे जलाशय, ज़ंग लगी पाइपलाइनें, गाद से ढँके उपकरण और बिजली से चलने वाले पानी के पम्प इनकी ख़स्ताहालत बयान करते हैं।

2013 से गाद निकालने का ठेका होने के बावजूद, गाद नहीं निताली गयी, जिसके परिणामस्वरूप पिछले आठ वर्षों के दौरान तालाब की गहराई 4.26 मीटर से घटकर मात्र 0.42 मीटर रह गयी है। सितम्बर 2014 में नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल के एक स्थगन आदेश के कारण गाद निकालने का काम रोक दिया गया था और 2015 में स्थगन हटाये जाने के बाद इसे फिर से शुरू किया गया था। यहाँ यह रेखांकित करने योग्य है कि यहां 2013 से 2014 के बीच लगभग नौ महीनों में पाँच लाख क्यूबिक मीटर गाद हटायी गयी थी।

पानी की आपूर्ति पर भाजपा और आम आदमी पार्टी के नेता मन्त्रियों के बीच खूब ज़ुबानी जंग चल रही है। इन तमाम आरोपों-प्रत्यारोपों के बीच भाजपा और आम आदमी पार्टी का चेहरा नंगा हो जाता है। उपराज्यपाल और जल मन्त्री दोनों अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़कर दिल्ली में पानी की कमी का कारण जनसंख्या और झुग्गी-बस्तियों के विस्तार होने को बता रहे हैं। ज़ाहिरा तौर पर, अपनी नाकामी छिपाने में लिये तू नंगा तू नंगा का खेल खेल रहे हैं और सारी समस्या का ठीकरा स्वयं मेहनतकश जनता के सिर फोड़ रहे हैं, जो दिल्ली में सबकुछ चलाती है और सबकुछ बनाती है और जिसकी मेहनत की लूट के दम पर यहाँ के धन्नासेठों, नेताओं-मन्त्रियों और नौकरशाहों की कोठियाँ चमक रही हैं। भाजपा और आम आदमी पार्टी जनता के लिये कितनी सवेंदनशील है ये साफ नज़र आता है।

केजरीवाल सरकार ने 700 लीटर मुफ़्त पानी देना का जो वायदा किया उसे केवल एक ख़ास वर्ग के लिए निभाया है। एक तरफ़ दिल्ली के मध्यम और उच्च-मध्यम वर्ग की सोसायटी में पानी की दिक्कत होने पर उसे तुरन्त प्रभाव से ठीक कर दिया जाता है। उनके कुत्ते और गाड़ी धोने के लिए भी पर्याप्त पानी सप्लाई किया जाता है। इसके विपरीत दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों में पीने के पानी के लिये भी लम्बी कतारें देखने को मिलती हैं। मज़दूर आबादी सप्ताह भर के लिए पानी स्टोर करके रखती है। इस पानी की गुणवत्ता भी पीने लायक नहीं है। इन इलाक़ों में 350 से 450 टीडीएस के बीच पानी की सप्लाई होती है। लेकिन दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों में पानी की समस्या के लिए कोई समाधान नहीं किया जाता। मज़दूर इलाक़ों में पानी को लेकर जनता के जुझारू आन्दोलन संगठित करने की आवश्यकता है और इस दिशा में प्रयास चल भी रहे हैं।

नूंह में हुई हिंसा की सच्चाई : एक जाँच रिपोर्ट

(पेज 5 से आगे)

है। हम लोग यह चाहते हैं 28 अगस्त को भी जो यात्रा निकलने वाली है, उसका शान्तिपूर्ण तरीके से निपटारा हो।

सारे गाँवों में डर का माहौल है। ज़्यादातर गाँवों में 20 से 50 वर्ष तक के पुरुष मौजूद नहीं हैं।

उन्हें डर है कि कहीं उन्हें भी पुलिस कहीं गिरफ़्तार न कर लें। गाँवों में पुलिस की गाड़ियां देख लोग घरों में घुस जाते हैं। बच्चे तक स्कूल नहीं जा रहे हैं। बहुत से घरों के कमाने वाले लोग या तो गिरफ़्तार हैं या छिपे-छिपे घूम रहे हैं, जिस वजह से ग़रीब परिवारों को खाने-पीने तक की दिक्कत का सामना करना पड़ रहा है।

पुलिस प्रशासन ने भी जगह-जगह पुलिस और आर.पी.एफ की तैनाती की हुई है। हर एक आने-जाने वालों की तलाशी ली जा रही है। कहने के लिए प्रशासन और सरकार दंगाइयों पर कारवाई कर रही है, पर यह जगज़ाहिर है कि यह सब एकतरफा कारवाई है। जब तक मोनू मानेसर व बिट्टू बजरंगी जैसे आपराधिक हत्यारे व साम्प्रदायिक तत्व खुले घूम रहे हैं, तब तक दंगाइयों पर कार्रवाई की कोई भी बात बकवास और बेहूदा मज़ाक है। नूंह की घटना के बाद गुड़गाँव में चुन-चुनकर मुस्लिम इलाक़ों की निशाना बनाया गया। मुस्लिमों को जगह छोड़ने की धमकी दी गयी। संघ द्वारा महापंचायत कर मुस्लिमों को बहिष्कार और उनके क़त्लेआम की बात कही गयीं। इन सब पर खट्टर सरकार कान में तेल डाल कर सो रही है। ज़ाहिर है, हरियाणा में साम्प्रदायिक तनाव व दंगे फैलाने में मिल रही नाकामयाबी पर भाजपा सरकार व संघ परिवार बौखलाये हुए हैं।

निष्कर्ष

असल में नूंह में मोनू मानेसर, बंटी आदि जैसे अपराधी बजरंग दलियों और विहिप द्वारा योजनाबद्ध तरीके से दंगे भड़काये गये और उसके ज़रिये हरियाणा समेत पूरे देश में हिन्दू-मुसलमान दंगे फैलाने के प्रयास किये गये। इसका कारण है कि अगले साल हरियाणा और देश में चुनाव हैं और हमेशा की तरह संघ चुनाव से पहले दंगों की बारिश कराने में लग गया है ताकि अगले साल वोट की अच्छी फ़सल काटी जा सके और जनता का ध्यान महँगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार से भटकाया जा सके।

हरियाणा और दिल्ली में साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की संघी हाफ़पैण्टियों की साज़िश पहले की तरह कामयाब नहीं हो पायी और काफ़ी दम लगाने के बाद भी दंगाई उन्माद नहीं भड़का पाये। हरियाणा और विशेष तौर पर मेवात की जनता ने दंगों को नहीं भड़कने दिया है और एकजुटता बनाये रखकर भाजपा की साज़िश को काफ़ी हद तक बेअसर किया है। फिर भी अभी हमें लगातार सावधान रहने और अपनी एकजुटता मज़बूत करने की ज़रूरत है, ताकि भविष्य में भी संघ परिवार की दंगाई साज़िशें कामयाब न होने पायें।

क्या है बजरंग दल और मज़दूरों को इससे क्यों सावधान रहना चाहिए?

● भारत

नूंह में हुई घटना के बाद बजरंग दल-विश्व हिन्दू परिषद का नाम एक बार फिर से सुर्ख़ियों में है। नूंह में भड़के साम्प्रदायिक तनाव में इन संगठनों की भूमिका केन्द्रीय थी। कई रिपोर्ट और चश्मदीद इस बात की पुष्टि कर चुके हैं। बिट्टू बजरंगी जिसे अब वीएचपी ने अपना सदस्य मानने से इन्कार कर दिया, वह भी ख़ुद को बजरंग दल का ही सदस्य बताता था। वहीं मोनू मानेसर भी ख़ुद को बजरंग दल का ही सदस्य बताता है। तो आइए जानते हैं, बजरंग दल के बारे में कि आख़िर यह संगठन क्या है और जहाँ भी साम्प्रदायिक तनाव या दंगा होता है, वहाँ क्यों बजरंग दल ही सबसे आगे मिलता है!

बजरंग दल की स्थापना और उसका ढाँचा

बजरंग दल का गठन 8 अक्टूबर 1984 को हुआ। बजरंग दल के संस्थापक अध्यक्ष विनय कटियार ने एक इण्टरव्यू में कहा था कि इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य मठ-मन्दिरों पर से क़ब्ज़ा हटवाना था। बजरंग दल एक साम्प्रदायिक फ़ासीवादी संगठन है, जो विश्व हिन्दू परिषद (विहिप या वीएचपी) की युवा शाखा है। विश्व हिन्दू परिषद का आन्तरिक संगठन होने की वजह से बजरंग दल के पास कामकाज और संगठन संरचना का अपना कोई लिखित संविधान नहीं है। बजरंग दल में मौखिक तौर पर नियुक्तियाँ होती है। यह आरएसएस के संगठनों के परिवार का सदस्य है। संगठन की विचारधारा साम्प्रदायिक फ़ासीवाद पर आधारित है। 1984 को उत्तर प्रदेश में स्थापना के बाद से इसे पूरे भारत में फैलाया गया, हालाँकि इसका सबसे महत्वपूर्ण आधार देश का उत्तरी और मध्य भाग है। ऊपरी तौर पर, दल का एक मुख्य लक्ष्य अयोध्या में भगवान राम जन्म भूमि मन्दिर, मथुरा में भगवान कृष्ण जन्म भूमि मन्दिर और वाराणसी में काशी विश्वनाथ मन्दिर का निर्माण करना है। साथ ही, इनका लक्ष्य कम्युनिस्टों पर हमले करना, मुस्लिम आबादी में बढ़ोत्तरी की "रोकथाम" करना, ईसाई पन्थ परिवर्तन व गोवध को रोकना और इसके ज़रिये भारत की "हिन्दू" पहचान की रक्षा करना है। यह बात अलग है कि जब भाजपाई नेता खुद गोमांस की सप्लाई करने की बात करते हैं और खुद बूचड़खाने खोले बैठे होते हैं, तो बजरंग दल सुरंग दल में तब्दील हो जाता है और किसी सुरंग में घुस जाता है!

बजरंग दल साल में 6 बार अखण्ड भारत दिवस (14 अगस्त), हनुमान जयन्ती (चैत पूर्णिमा), राम नवमी (चैत नवमी), हुतात्मा दिवस (30 अक्टूबर से 02 नवम्बर), शौर्य दिवस (6 दिसम्बर) और साहसिक दिवस (सावल शुक्ल पक्ष) पर जुलूस निकालता है। इन जुलूसों को दंगे भड़काने के लिए इस्तेमाल किया जाता है, जैसा पिछले साल दिल्ली के जहाँगीरपुरी में हुआ और इस साल देश के अलग अलग इलाक़ों में।

अब कुछ उदाहरणों के माध्यम से जानते हैं कि कहाँ-कहाँ दंगों में बजरंग दल संलिप्त रहा है।

– 1992 में बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद नरसिंह राव सरकार द्वारा बजरंग दल पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, लेकिन एक साल बाद प्रतिबन्ध हटा दिया गया।

– ह्यूमन राइट्स वॉच (HRW) ने 1998 के दक्षिण-पूर्वी गुजरात में ईसाइयों पर हमलों के दौरान बजरंग दल के शामिल होने की सूचना दी थी, जहाँ संघ परिवार के संगठनों द्वारा दर्जनों चर्च और प्रार्थना हॉल जला दिये गये थे। हाल ही में दिल्ली में भी यह घटना हुई जहाँ बजरंग दल के सदस्यों ने चर्च में घुसकर लोगों को पीटा।

– एचआरडब्ल्यू के अनुसार, बजरंग दल 2002 में गुजरात में मुसलमानों के ख़िलाफ़ दंगों में शामिल हुआ था। बजरंग दल के बाबू बजरंगी को नरोदा पाटिया और नरोदा गाम मामले में प्रमुख आरोपी बनाया गया था। बजरंग दल के कई कार्यकर्ताओं पर हिंसा भड़काने का केस दर्ज किया गया था।

– बजरंग दल का मानना है कि मुस्लिमों का आर्थिक बहिष्कार होना चाहिए। "लव जिहाद"-"लैंड जिहाद" के बारे झूठी अफ़वाहें फैलाकर बजरंग दल वाले मुसलमानों को निशाना बनाने का प्रयास करते हैं, लेकिन असल मक़सद होता है व्यापक मेहनतकश जनता को कमज़ोर करना और बड़ी पूँजी के पक्ष में गुण्डावाहिनी का काम करना। उत्तराखण्ड से लेकर कई जगहों पर इस आधार पर साम्प्रदायिक तनाव इनके द्वारा खड़ा किया गया है।

– हर वर्ष बजरंग दल के कार्यकर्ता वेलेण्टाइन डे पर प्रेमी जोड़ों को पकड़कर, उन्हें अपनी इच्छा के ख़िलाफ़ सिन्दूर या राखी लगाने के लिए मजबूर करते हैं। कार्यकर्ताओं ने अक्सर उपहार की दुकानों और रेस्तराँ पर भी हमला किया है।

– बजरंग दल "आत्मरक्षा" के नाम पर हथियार चलाने का प्रशिक्षण देने के लिए शिविरों का आयोजन करता है। इन शिविरों का असली मक़सद अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ गहरी नफ़रत पैदा करना, उनके निर्मम क़त्लेआम के लिए मानसिक तौर पर तैयार करना और इसके लिए हथियारबन्द प्रशिक्षण देना है। इन शिविरों में तलवार, बन्दूक़, छुरा, लाठी आदि चलाने आदि की ट्रेनिंग दी जाती है। उत्तर प्रदेश में अब तक अयोध्या, नोयडा, सिद्धार्थनगर आदि जगहों पर ऐसे शिविर लगाये जा चुके हैं।

ये चन्द उदाहरण हैं जो कि बजरंग दल की कार्यपद्धति को दर्शाते हैं। **अब यह जानना भी ज़रूरी है कि बजरंग दल जैसे साम्प्रदायिक फ़ासीवादी संगठनों को बनाने और फैलाने के पीछे फ़ासीवादी संघ परिवार का पूरा एजेण्डा क्या है!**

फ़ासीवाद मज़दूर वर्ग का सबसे बड़ा शत्रु है और वह सत्ता के अन्दर और बाहर से मज़दूर आन्दोलन पर हमेशा हमले करता रहा है। मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से निपटने के लिए दुनिया के तमाम देशों में पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग की औसत मज़दूरी को घटाना चाहता है व उसके सारे श्रम अधिकार निरस्त करना चाहता है और इसके लिए वे सबसे प्रतिक्रियावादी, दक्षिणपन्थी, मज़दूर-विरोधी और फ़ासीवादी सरकारों को बढ़ावा दे रहे हैं। भारत में पूँजीपति वर्ग ने भाजपा को चुना, जिसके पीछे संघ जैसा कैडर-आधारित संगठन है। मोदी सरकार के आने के बाद से पूरे देश में महँगाई, बेरोज़गारी अपने चरम पर है। आम जनता के लिए शिक्षा-स्वास्थ्य जैसी बुनियादी चीज़ें भी पहुँच से दूर होती जा रही हैं। देश की बड़ी आबादी दस-बारह घण्टे काम कर बमुश्किल जीवन निर्वाह कर पा रही है। वहीं दूसरी तरफ़ अडानी-अम्बानी का "देश" तरक़्क़ी की ऊँचाइयों पर है और उन्हें तरक़्क़ी पर पहुँचाने का काम मोदी सरकार ने पिछले नौ सालों में बख़ूबी किया है। एक तरफ़ मोदी सरकार पूँजीपतियों के कर्ज़ माफ़ करती है, तो दूसरी तरफ़ आम जनता के लिए आटा, दाल, तेल, चीनी, टमाटर, आलू, पेट्रोल इत्यादि सब महँगा हो जाता है। जनता के भीतर हालात को लेकर गुस्सा बढ़ता रहता है। तो ऐसे में मोदी के पास संघ के रूप में ब्रह्मास्त्र है, जो जनता के बीच फैले असन्तोष का रुख मोड़ देता है। यानी असल मुद्दों से ध्यान भटका देता है। इसलिए देश स्तर पर दंगे भड़काये जाते हैं, हिन्दू-मुस्लिम व अन्य धर्मों व जातियों के बीच साम्प्रदायिक तनाव फैलाया जाता है, ताकि लोग एकजुट होकर अपने हक़-अधिकार न माँग सकें। ठीक इसी काम को बढ़ावा देने के लिए बजरंग दल का भी जन्म हुआ और मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से इनकी गतिविधियों में ज़बर्दस्त इज़ाफ़ा हुआ और सत्ता द्वारा इन्हें संरक्षण प्राप्त हो गया।

बजरंग दल का मानना है कि "हिन्दू राष्ट्र" बनना चाहिए। इसका तो यह अर्थ निकलना चाहिए है कि इन्होंने सभी हिन्दुओं की रक्षा का बीड़ा उठाया है। तो आइए बजरंग दल-विश्व हिन्दू परिषद और संघ से कुछ सवाल पूछते हैं। **आपको भी जहाँ इनके कार्यकर्ता दिखें और हिन्दू एकता का पाठ पढाएँ उनसे यह सवाल ज़रूर पूछिए:**

– क्या बजरंग दल और विश्व हिन्दू परिषद ने दिल्ली से लेकर गुरुग्राम, मानेसर, धारुहेड़ा या फ़रीदाबाद या देश में कहीं भी मज़दूर आन्दोलन को समर्थन दिया है? जबकि इन औद्योगिक इलाक़ों में सभी संघर्षों में लगभग 90 फ़ीसदी आबादी हिन्दुओं की होती है। याद कीजिए होण्डा, हीरो, मारुति, रीको से लेकर किसी भी मज़दूर आन्दोलन में ये हिन्दुओं के फ़र्ज़ी ठेकेदार कभी नज़र आये हैं?

– लाखों की संख्या में ठेका, अस्थायी, दिहाड़ी करने वाले मज़दूरों के पैसे ठेकेदार या मालिक हड़प जाता है, तब ये धर्म के ठेकेदार मदद के लिए सामने क्यों नहीं आते? ऐसे अधिकांश मज़दूर-मेहनतकश भी तो हिन्दू ही होते हैं!

– लॉकडाउन के समय जब करोड़ों मज़दूर सड़कों पर पैदल चल रहे थे, रोटी-पानी के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहे थे तब यह दल और परिषद कहाँ थी? इनमें भी तो अधिकांश हिन्दू ही थे!

– देश भर में करोड़ों मज़दूर लॉज (किराये के कमरों) और झुग्गियों में रहते हुए जानते हैं कि वे कैसे दबड़ेनुमा कमरों में डर और ख़ौफ़ के साए में रहते हैं। कमरे के किराये, महँगाई और इन बदतर हालातों के लिए यदि मज़दूर आवाज़ उठाते हैं, तो सबसे पहले मज़दूरों को दबाने के लिए यह फ़र्ज़ी धर्म के ठेकेदार ही सामने आते हैं और कहीं भी झुग्गियों को तोड़ा जाता है तो ये उसका समर्थन करते हैं। ये कभी मज़दूरों की बेहतर जीवन स्थिति की बात क्यों नहीं करते?

– करोड़ों मज़दूर आज अस्थायी व ठेके पर काम कर रहे हैं। क्या उसके ख़िलाफ़ क्या कभी बजरंग दल और तमाम हिन्दू संगठन सामने आये है? 90 फ़ीसदी हिन्दू मज़दूर असुरक्षा (छँटनी, तालाबन्दी) और भय के माहौल में जीते हैं! तब ये लोग कहाँ छिप जाते हैं? संघ-बजरंग दल या विश्व हिन्दू परिषद हिन्दुओं के भी सच्चे हितैषी नहीं हैं, बल्कि ये अपने पूँजीपति आकाओं के सेवक हैं।

असल में फैक्ट्री मालिकों, ठेकेदारों के पैसों से चलने वाले ये धर्मध्वजाधारी वास्तव में मालिकों की ही सेवा करने के लिए खड़े हैं। आज हर क्षेत्र का पुलिस प्रशासन भी ऐसे हिंसक संगठित गिरोहों को इसलिए फलने-फूलने का मौका देता है ताकि भविष्य में जुझारू मज़दूर आन्दोलन पर हमले करवा सकें या उसको कुचलने के लिए प्रतिक्रियावादी ताक़तों का इस्तेमाल कर सकें। पहले भी मज़दूर आन्दोलनों व हड़तालों पर बजरंग दल, विहिप, शिवसेना जैसे साम्प्रदायिक संगठन अपने पूँजीपति आकाओं के इशारों पर हमले करते रहे हैं, ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं की हत्याएँ करते रहे हैं।

इसलिए आज तमाम मेहनतकश साथियों, इन्साफ़पसन्द नागरिकों को ऐसे धर्म के फ़र्ज़ी ठेकेदारों से सावधान रहना चाहिए। मेहनतकश आबादी के संघर्षों को एकजुट करने के लिए अपने सच्चे साथियों को पहचानना चाहिए। याद रखिए महँगाई, बेरोज़गारी और बदहाली कभी धर्म-जात पूछकर नहीं आती। इसलिए हमें समझना होगा कि धर्म-जात के झगड़े में हम जैसी ग़रीब-मेहनतकश आबादी ही उजड़ेगी, दंगों के नाम पर बेरोज़गार युवाओं को ही चारा बनाया जायेगा। तमाम धर्म के ठेकेदार दूर ए.सी. कमरों में बैठकर फ़ेसबुक लाइव से भाषण देकर आग भड़कायेंगे और नुकसान मेहनतकश आबादी को उठाना पड़ेगा। दंगों की आग पर रोटियाँ सेंककर भाजपा व संघ को कुर्सी मिलेगी और इनके नेताओं के बच्चे विदेशों में पढ़कर मौज करेंगे।

इसलिए **शहीदे आज़म भगतसिंह** की यह बात हमें कभी नहीं भूलनी चाहिए :

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

कांस्टेबल चेतन सिंह अकेला नहीं! देश भर में साम्प्रदायिक उन्माद फैलाकर साम्प्रदायिक फ़ासीवादी ज़ॉम्बीज़ की फ़सल तैयार कर रहा है संघ परिवार

● अविनाश (मुम्बई)

सोमवार (31 जुलाई, 2023) को एक दिल दहला देने वाली घटना घटी। सुबह करीब 5:20 के आस-पास मुंबई जाने वाली, 12956 जयपुर-मुंबई सुपरफास्ट एक्सप्रेस में, रेलवे सुरक्षा बल (आरपीएफ़) के एक कांस्टेबल चेतन सिंह ने चार लोगों की गोली मारकर हत्या कर दी। कांस्टेबल चेतन सिंह द्वारा मारे गये लोगों में से एक उसका वरिष्ठ सहयोगी था व बाकी तीन ट्रेन में सफर कर रहे मुस्लिम यात्री थे। यह ट्रेन सुबह 6:55 में मुंबई सेंट्रल पहुंचने वाली थी। जब घटना घटी, तब ट्रेन वापी और पालघर स्टेशन के बीच थी।

अपने वरिष्ठ सहयोगी टीकाराम मीणा को गोली मारने के बाद सबसे पहले कांस्टेबल चेतन सिंह ने 60 वर्षीय अब्दुल कादरभाई भानपुरवाला की हत्या कोच नं. B-5 में की, फिर उसके बाद सदर मोहम्मद हुसैन की और अन्त में कई कम्पार्टमेंट पार करने के बाद, S-6 में 35 वर्षीय असगर अब्बास अली को गोली से मार दिया। जैसे ही असगर अली का शरीर नीचे गिरा, कांस्टेबल चेतन सिंह ने मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत से भरा एक छोटा सा भाषण देना शुरू किया, “अगर हिंदुस्तान में रहना है, तो योगी और मोदी को वोट देना होगा...”

एक वरिष्ठ अधिकारी ने कांस्टेबल चेतन सिंह को मानसिक तौर पर असन्तुलित बताया है। बिल्कुल, सही बात है! जब कोई मुसलमान कोई ऐसा साम्प्रदायिक काण्ड करे, तो वह आतंकवादी कहलायेगा और उस पर रासुका, पोटा, टाडा सबकुछ लगा दिया जायेगा। लेकिन अगर कोई संघी रुग्ण साम्प्रदायिक फ़ासीवादी मानसिकता का व्यक्ति ऐसी आतंकी कार्रवाई को अंजाम देगा तो वह “मानसिक रूप से असन्तुलित” कहलायेगा!

ऐसी रुग्ण साम्प्रदायिक ज़हर से ग्रसित आबादी कैसे पैदा हो रही है? यह समझने की ज़रूरत है कि यह एक दिन में तैयार नहीं होती। बल्कि इसके लिए पूरा माहौल सालों से तैयार किया जा रहा है। यह अपने आप में इकलौती घटना नहीं है। ऐसी ही साम्प्रदायिक नफ़रत से लैस घटना अभी हाल ही में 24 अगस्त को उत्तरप्रदेश के मुज़फ़्फ़रनगर में घटी है। यह घटना गुरुमंसूरपुर पुलिस थाने के अन्तर्गत आने वाले खुब्बापुर गाँव में हुई जिसमें एक शिक्षिका तृप्ता त्यागी, एक बच्चे को मुस्लिम होने की वजह से सज़ा दे रही थी। इस घटना में वह उस बच्चे को अन्य बच्चों से पिटवाते हुए कह रही है, "मैंने तो घोषणा कर दिया, जितने भी मुसलमान बच्चे हैं, इनके वहाँ चले जाओ।" फिर पीटने वाले बच्चों को डाँटते हुए कह रही है “क्या तुम मार रहे हो? ज़ोर से मारो ना।”

इसी तरह देशभर में अलग-अलग जगह साम्प्रदायिक दंगों व तनाव की घटनाएँ घटी हैं। भाजपा और विश्व हिन्दू परिषद (वीएचपी) के कार्यकर्ताओं ने छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में मुस्लिम और ईसाई समुदायों का आर्थिक बहिष्कार करने का संकल्प लिया। इस कार्यक्रम में बस्तर के पूर्व लोकसभा सांसद भी मौजूद थे। मुजफ्फरपुर(बिहार), शबाना नाम की एक महिला और एक लड़के को रामनवमी रैली में हिस्सा ले रहे 10-12 लोगों के एक समूह ने पीटा और "मुल्ले काटे जायेंगे" जैसे नारे लगाये। ख़बर यह है कि ये सब बजरंग दल से जुड़े हुए थे। रामानगर (कर्नाटक) में पुनीथ केरेहाली के नेतृत्व में पाँच गोरक्षकों ने एक मुस्लिम पशु व्यापारी इदरीस पाशा का पीछा किया और उसे पीटा, जिससे उसकी मौत हो गयी। उन्होंने पाशा से कहा, “पाकिस्तान वापस जाओ।” पाशा के परिवार ने आरोप लगाया कि गोरक्षकों ने उसे छोड़ने के लिए पाशा से 2 लाख रुपये की माँग की थी। ये घटनाएँ किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को अन्दर तक झकझोर कर रख सकती हैं और यह सवाल पूछने पर मजबूर कर सकती हैं कि आख़िर देश किस तरफ जा रहा है?

बढ़ती साम्प्रदायिक हिंसा व तनाव के पीछे भाजपा व आरएसएस का साम्प्रदायिक फ़ासीवादी एजेण्डा है ज़िम्मेदार

भाजपा ने सत्ता में आने के बाद ‘हिदुत्ववादी’ एजेण्डे के तहत साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का काम बहुत तेजी से किया है, जिसकी पुष्टि इण्डिया स्पेण्ड की हालिया पहल पर बनी एक स्वतन्त्र एजेंसी ‘हेट क्राइम वॉच’ भी करती है। जिसके अनुसार पिछले दशक में दर्ज किये गये लगभग 91 प्रतिशत नफ़रती अपराध (HATE CRIME) प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी के सत्ता में आने के चलते हुए हैं। हेट क्राइम वॉच द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार, जनवरी 2009 से 30 अप्रैल, 2019 तक दर्ज किये गये 287 नफ़रती अपराधों में से 262 पिछले पाँच वर्षों में हुए। उत्तर प्रदेश, जो भारत का सबसे अधिक आबादी वाला राज्य है, जिसका नेतृत्व आज भाजपा के फायरब्राण्ड साम्प्रदायिक नेता अजय सिंह बिष्ट उर्फ “योगी आदित्यनाथ” कर रहे हैं, यहाँ नफ़रती अपराधों की संख्या भी सबसे अधिक दर्ज की गयी है। हेट क्राइम वॉच ने पाया कि लगभग 66 प्रतिशत मामले भाजपा शासित राज्यों में हुए हैं। मई 2014 से 30 अप्रैल, 2019 के बीच देश के 36 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के 23 राज्यों में धार्मिक पूर्वाग्रह से प्रेरित नफ़रती अपराधों से सम्बन्धित घटनाओं में 99 लोग मारे गये और लगभग 703 घायल हुए है। अन्य राज्यों में भी ज़्यादातर मामले भाजपा और संघ परिवार की गुण्डा वाहिनियों द्वारा किये गये हैं।

एक और बात जो अधिक स्पष्ट हुई कि 83 प्रतिशत नफ़रती अपराध उन हमलावरों द्वारा किये गये थे, जो कथित तौर पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सहित संघ परिवार के अनुषंगी संगठनों से जुड़े थे, जैसे की बजरंग दल, हिंदू युवा वाहिनी और विश्व हिन्दू परिषद व अन्य। साथ ही कुछ भाजपा और शिवसेना के राजनीतिक दलों में भी शामिल थे। बजरंग दल के सदस्य सबसे अधिक संख्या में नफ़रती अपराधों में शामिल पाये गए। हेट क्राइम के 30 मामलों में बजरंग दल के सदस्यों के शामिल होने का आरोप था।

हेट क्राइम वॉच की रिपोर्ट के अनुसार सबसे अधिक नफ़रती अपराधों वाला जिला दक्षिण कन्नड़ है। जिसके बाद राजस्थान का अलवर जिला आता है। यहीं पर स्वयंभू गौरक्षकों ने 2017 में पहलू खान और 2018 में रकबर खान की पीट-पीट कर हत्या कर दी थी। अलवर के बाद, कृषि की दृष्टि से समृद्ध पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर, मेरठ और शामली जिले आते हैं जहाँ 2013 के साम्प्रदायिक नरसंहार के बाद से अब तक धार्मिक और जातीय हिंसा की आग सुलगाकर रखने की कोशिशें जारी हैं।

नफ़रती प्रोपगैण्डा की मशीनरी से खड़े किये जा रहे है साम्प्रदायिक फ़ासीवादी ज़ॉम्बीज़

एक पूरी ज़िन्दा-मुर्दा नरभक्षी आबादी की फ़सल खड़ी की जा रही है, जिनकी इन्सानियत पूरी तरह मर चुकी है। नफ़रत और द्वेष का ज़हर लगातार परोसा जा रहा है, जिससे सोचने-समझने की पूरी ताकत क्षीण होती जा रही है। ऐसे संवेदनविहीन व ‘इन्सानियत की बुनियादी शर्तें’ खो देने वाली ज़िन्दा-मुर्दा ज़ॉम्बीज़ की पूरी फ़सल खड़ी की जा रही रही है। इन ज़ॉम्बीज़ की फ़सल को उगाने में मीडिया का बहुत बड़ा योगदान है जिसे आज कल गोदी, बिकाऊ, दलाल (एजेंट) और दंगाई मीडिया के नाम से भी जाना जाता है। यह दिन के 24 घंटे लगातार हिन्दू-मुसलमान व पाकिस्तान के नाम पर साम्प्रदायिक ज़हर घोलता रहता है। इन भाजपा/आरएसएस समर्थक समाचार चैनलों में प्रमुख हैं, रिपब्लिक टीवी, टाइम्स नाउ, इण्डिया टुडे और सीएनएन-न्यूज़ 18, और हिन्दी टीवी चैनल में ज़ी न्यूज़, एबीपी न्यूज़, आज तक, इण्डिया टीवी, सुदर्शन न्यूज़, न्यूज़ नेशन और न्यूज़24 है। इन चैनलों के अलावा, भारतभर में क्षेत्रीय भाषाओं में कई और समाचार और कम से कम 18 हिन्दू धार्मिक चैनल हैं, जो “हिन्दू राष्ट्र” की स्थापना के नाम पर फ़ासीवादी सत्ता को मज़बूत करने के लिए साम्प्रदायिक और मज़दूर-विरोधी ताकतों के एजेण्डे को बढ़ावा देते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह सब स्टेट स्पॉन्सर्ड यानी ‘राज्य प्रायोजित’ है।

इनमें से कुछ टीवी चैनलों में कुछ भाजपा और आरएसएस नेताओं, सांसदों और समर्थकों का स्वामित्व है या सीधे हिस्सेदारी है। जैसे रिपब्लिक टीवी का एंकर और फाउंडर अर्णब, मनोरंजन गोस्वामी का बेटा है, जो भाजपा में शामिल था। सिद्धार्थ भट्टाचार्य, अर्णब का मामा हैं, जो भाजपा विधायक और असम की राज्य सरकार में मन्त्री है। रिपब्लिक टीवी में पहले केन्द्र सरकार में मंत्री राजीव चन्द्रशेखर की बड़ी भागीदारी थी जे बाद में उसने अर्णब गोस्वामी को सौंप दी। सीएनएन-न्यूज़18 चैनल का स्वामित्व प्रधानमन्त्री मोदी के ख़ास मुकेश अंबानी की रिलायंस इंडस्ट्रीज के पास है, इसलिए मुसलमानों के प्रति इसके पूर्वाग्रह को समझाने के लिए किसी विवरण की आवश्यकता नहीं है। ज़ी न्यूज़ - यह एस्सेल समूह के स्वामित्व वाले कई हिन्दी, अंग्रेज़ी और स्थानीय भाषा समाचार चैनलों में से एक है। चैनल का मालिक सुभाष चन्द्रा भाजपा के समर्थन से राज्यसभा सदस्य बना था। इसलिए चैनल पर हिन्दुत्व एजेण्डे को बढ़ावा देना और मुस्लिम विरोधी हमला हमेशा जारी रहता है। इसके अलावा सबसे नंगे किस्म का दंगाई सुदर्शन न्यूज़ चैनल है। यह चैनल मुस्लिम विरोधी सामग्री लगातार प्रसारित करता है और साम्प्रदायिक रंग के साथ फ़र्ज़ी ख़बरें बनाता है। इसका मालिक, सुरेश चव्हाण, लम्बे समय तक आरएसएस का स्वयंसेवक था। हाल ही में सुदर्शन न्यूज़ ने हथियार उठाने के खुले आह्वान से लेकर पत्थरबाज़ों के लिए “स्थायी इलाज” की माँग की है, जो हिटलर के “अन्तिम समाधान” के आह्वान की तरह लगता है।

नफ़रत फैलाने वालों को भाजपा ने राज्य सत्ता का पूरा संरक्षण भी दे रखा है। ‘सैंया भए कोतवाल अब डर काहे का’! इसलिए मोनू मानेसर, बिट्टू बजरंगी और इसी प्रकार के अन्य दंगाई नफ़रती चिण्टुओं को ज़मीन पर खुले तौर पर नफ़रती साम्प्रदायिक भाषण देने की छूट मिली हुई है। कई जगह सभाएँ की जा रही हैं, खुलेआम “हिन्दू राष्ट्र” के नाम पर मुस्लिमों के फ़ासीवादी नरसंहार का आह्वान किया जा रहा है। नूंह में जब हाईकोर्ट के जज ने बुलडोज़र राज और ‘साम्प्रदायिक जनसंहार’ की बात की तो उनका तबादला करवा दिया गया। बिलकिस बानो के बलात्कारियों को कैद से रिहा करा दिया जाता है और बाद में भाजपा के मन्त्री द्वारा पुष्प-मालाओं से स्वागत किया जाता है। ऐसे में जो जितनी नफ़रत भरी बात करेगा, उसे उतना भाजपा में उतना ऊँचा स्थान मिलेगा। इसका हालिया उदाहरण कपिल मिश्रा के रूप में देखने को मिल जाता है, जिसने जामिया मिल्लिया और शाहीन बाग पर साम्प्रदायिक घृणा फैलाने वाले भाषण दिये थे। अब उसे दिल्ली बीजेपी का उपाध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया है! मतलब, भाजपा में भर्ती की आज दो शर्तें हैं: या तो आप अव्वल दर्जे के कमीने दंगाई हैं या आप भयंकर भ्रष्ट व्यक्ति हैं। आप में अगर दोनों में से कोई भी “क्षमता” है, तो भाजपा में नेतागीरी करने के आपके लिए दरवाज़े खुले हैं।

इसके अलावा **केरला स्टोरी, 72 हूरें, कश्मीर फ़ाइल्स** और अन्य झूठे प्रोपेगेण्डा वीडियो-गानों के माध्यम से भी लोगों में लगातार साम्प्रदायिक ज़हर घोला जा रहा है। यह सब एक कुण्ठित, बीमार, मानवताविहीन और मनोरोगी किस्म की टुटपुँजिया आबादी को निर्मित कर रहे हैं। ऐसे में इस संघी फ़ासीवादियों की विनाशकारी मुहिम का एक ही इलाज है और वह है जन प्रतिरोध! इसे संगठित करने में हर इन्साफ़पसन्द नागरिक को अपनी ज़िम्मेदारी तय करनी होगी। शिक्षा, रोज़गार, महँगाई, चिकित्सा आदि जीवन से जुड़े असल मुद्दों के आधार पर जनता की जुझारू जनएकजुटता खड़ी करनी की ज़िम्मेदारी उठानी ही होगी। आज जनता का अच्छा-ख़ासा हिस्सा इस बात को समझ रहा है कि देश में दंगे और साम्प्रदायिकता की जो लहर फैलायी जा रही है, उसका मुख्य कारण यह है कि मोदी सरकार ने पिछले 10 सालों में देश की जनता को केवल बरबादी दी है, बेरोज़गारी, महँगाई और भ्रष्टाचार दिया है। ऐसे में, अपने काम पर मोदी सरकार वोट माँग नहीं सकती। उसके पास आख़िरी चारा यही है कि फिर से साम्प्रदायिकता का तन्दूर गर्म किया जाय, समाज में साम्प्रदायिक नफ़रत का ज़हर घोला जाये। नूंह में यही प्रयास जारी है। लेकिन इस बार मेवात की और हरियाणा की जनता इस चक्कर में पड़ने से इन्कार कर रही है। ऐसे में, भाजपा व संघ परिवार साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने के लिए और भी ज़्यादा ज़ोर लगायेंगे। जनता को सावधान रहना होगा।

लगातार बाधित संसद सत्र, जनता के टैक्स के पैसों की बर्बादी

• नौरीन

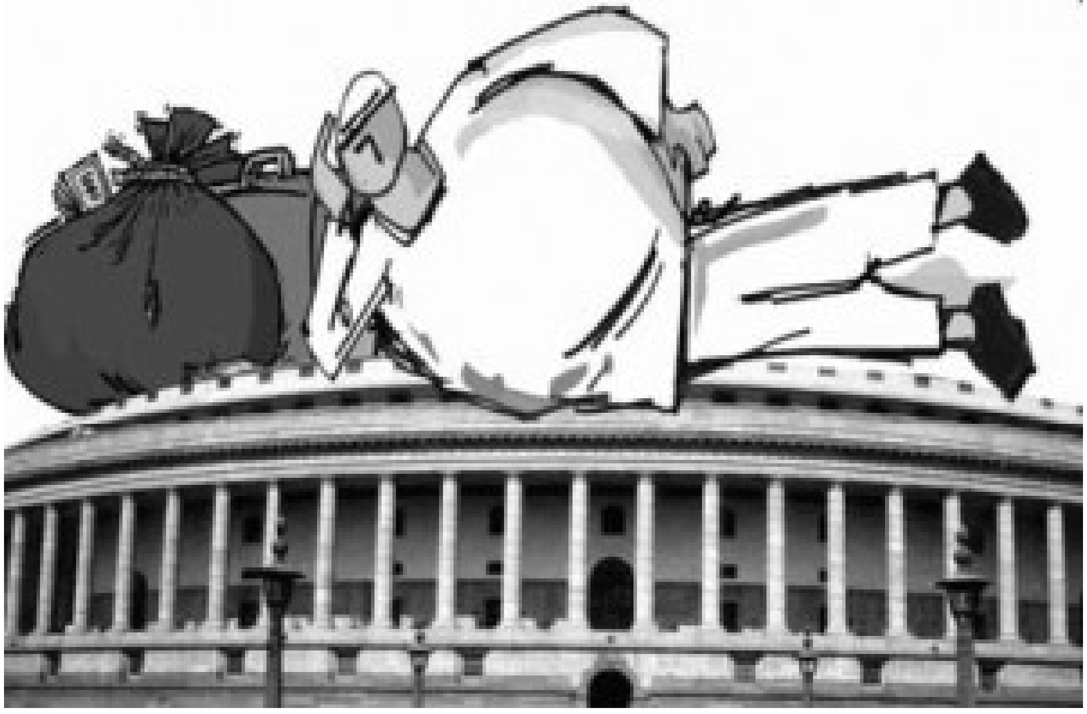

पूँजीवाद की चाशनी में लिपटी, "भारतीय जनतन्त्र" की नंगी तस्वीर हम सबके सामने है। सत्ता में आने से पहले, फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा जो "मुँगेरी लाल के हसीन सपने" दिखाये गये थे, उनकी हवा निकल चुकी है। यह कहना ग़लत नहीं होगा कि "कहाँ तो तय था चराग़ाँ हर एक घर के लिए, कहाँ चराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए"। कहाँ तो भारत को "विश्वगुरु" बनना था और कहाँ भारत विकासशील देशों की सूची से भी बाहर हो चुका है।

"विश्वगुरू भारत" में 32 करोड़ नौजवान बेरोज़गार हैं, 5 हज़ार से ज़्यादा बच्चे हर दिन भूख और कुपोषण से अपना दम तोड़ देते हैं। एक बड़ी आबादी के पास सिर ढकने के लिए छत नहीं है, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ बाज़ार में बिकने वाली वस्तु बन चुकी है। ऐसी स्थिति में, मेहनतकश आबादी से लूटे गये पैसों को, संसद की फ़िज़ूल बहसबाजी में लूटाना किसी त्रासदी से कम नहीं है।

इस बदहाली और तंगी के दौर में संसद की भव्यता में कहीं कोई कमी नहीं दिखायी दे रही है। जहाँ देश की मेहनतकश आबादी अपनी मूलभूत ज़रूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रही है, दड़बेनुमा कमरों में पूरे परिवार के साथ रहने को मजबूर है। वहीं दूसरी तरफ़, फ़ासिस्ट भाजपा सरकार द्वारा, एक संसद के होते हुए भी अपने ऐशोआराम और गप्पेबाजी के लिए 1200 करोड़ रुपये की लागत से नयी संसद का निर्माण किया गया है। यह कोई नेता-मन्त्री या अंबानी-अडानी का पैसा नहीं था, बल्कि यह टैक्स के नाम पर आम मेहनतकश जनता से लूटा गया पैसा था।

दस से बारह घण्टे काम बनाम अय्याशी और आराम

एक तरफ़ हमारे देश की वह मेहनतकश ग़रीब आबादी है, जो रोज़ 10 से 12 घण्टों तक कल-कारखानों में अपनी हड्डियाँ गलाती है। जो सुई से लेकर हवाई जहाज़ तक बनाती है। इसी मेहनतकश आबादी से, टैक्स के नाम पर निचोड़े गये पैसों से यह संसद चलती है। दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी लोग हैं जो जनता के सामने आँसू बहाकर, संसद तक तो पहुँच जाते हैं, लेकिन वहाँ जाने के बाद मेहनतकश आबादी के साथ गद्दारी करते हैं। मेहनत मजूरी करने वाले लोगों को संसद से पहले भी कोई ख़ास उम्मीद नहीं थी। लेकिन 2014 में फ़ासीवादी मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद जिस तरीके से लगातार संसद की कार्यवाही बाधित हो रही है,यह और कुछ नहीं बल्कि आम जनता के पैसों की बर्बादी है। वैसे भी जब पूँजीवादी संसद काम करती भी है, तो मालिकों, ठेकेदारों, व्यापारियों, दलालों के हितों के लिए ही नीतियाँ बनाती है और कभी-कभार मजबूरी में जनदबाव के कारण उसे जनता के लिए भी कुछ ख़ैर-ख़ैरात करनी पड़ती है। लेकिन आज तो ये सारी नीतियाँ भी फ़ासीवादी कैबीनेट में ही बन जाती हैं, संसद में दिखावे के लिए भी कोई बहस नहीं होती, और जो होता है वह जूतम-पैजार और कचरम-कूट! वह भी हर घण्टे जनता के करोड़ों रुपये पानी की तरह बहाकर!

पिछले कुछ वर्षों में संसद की कार्यवाही पर नज़र डालें तो पता चलता है की, 2021 के मानसून सत्र के दौरान संसद ने निर्धारित समय 107 घण्टों में से मात्र 18 घण्टे काम किया। वहीं संसदीय कार्यमन्त्री अर्जुन राम मेघवाल के अनुसार बजट सत्र 2023 के दौरान लोकसभा के उत्पादकता 34 प्रतिशत जबकि राज्यसभा की उत्पादकता 24.4 प्रतिशत दर्ज की गयी। पीआरएस लेजिसलेटिव रिसर्च के अनुसार इस सत्र में लोकसभा 133.6 घण्टे की तुलना में मात्र 45.9 घण्टे तक तथा राज्यसभा ने 130 घण्टे में से केवल 32.3 घण्टे तक काम किया।

इस दौरान हुए कुल खर्च की बात करें तो पता चलता है कि, संसद की कार्रवाई पर प्रत्येक मिनट 2.5 लाख रुपये का खर्च आता है। इस प्रकार 2021 के सिर्फ मानसून सत्र में कुल 133 करोड़ रुपये तथा बजट सत्र 2023 में लोकसभा में कुल एक अरब 31 करोड़ 55 लाख रुपये और राज्यसभा में एक अरब 46 करोड़ 55 लाख रुपये की बर्बादी हुई।

संसद की कार्यवाही के निर्धारित समय की बात करें तो, यह सुबह 11 बजे से शाम 6 बजे तक चलती है। इसमें एक घण्टे का लंच ब्रेक होता है जिसमें नेताओं को बहुत कम क़ीमत पर सब्सिडाइज़्ड खाना मिलता है। ये नेता-मन्त्री तमाम सुविधाओं के बाद भी मात्र 6 घण्टे "काम" करने का नाटक करते हैं। एक बार सांसद या विधायक बनने पर इन्हें तमाम सुविधाएँ जैसे वेतन भत्ते, स्वास्थ्य सुविधाएँ, मुफ्त में यात्रा करने और आवास की सुविधा इत्यादि मिलती। दूसरी तरफ हमारे देश की एक बड़ी आबादी कारखानों में ठेकों पर 10 से 12 घण्टों तक गुलामों की तरह घटती है। यह वही आबादी है जो अपने मूलभूत अधिकारों से भी महरूम है।

श्रम मन्त्रालय का एक आँकड़ा बताता है कि, भारत में 45% मज़दूरों की मज़दूरी 10,000 रुपये से भी कम है, वहीं महिला मज़दूरों को कई जगह 5000 रुपये से भी कम वेतन मिलता है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है की जिस वक्त संसद में हुल्लड़बाजी और बेमतलब के मुद्दों पर तू तू , मैं मैं करके संसद की कार्यवाही बाधित होती है और करोड़ों रुपये का नुकसान होता है, ठीक उसी समय एक बड़ी मेहनतकश आबादी प्रतिदिन चार सौ रुपये से भी कम कमाने के लिए अत्यन्त भयावह स्थिति में काम करने को मज़बूर होती है।

फ़ासीवाद के दौर में पूँजीवादी संसद : जनता के काम की बात के बजाय मोदी के मन की बात करने का अड्डा !

यह किसी से छिपा नहीं है की कैसे 2014 में सत्ता में आने के बाद से ही, इस फ़ासीवादी मोदी सरकार ने, जनता के पैसों पर चलने वाले संसद से, जनता के जीवन से जुड़े मुद्दों को गायब किया है। इसका ताज़ा उदाहरण अभी मणिपुर घटना के रूप में सामने आया। मणिपुर में जो भी हुआ वह एक इन्साफपसन्द समाज के माथे पर कलंक से कम नहीं है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसकी गुण्डा वाहिनियों तथा बीजेपी सरकार द्वारा दो समुदायों के बीच दंगे कराए गए,महिलाओं को निर्वस्त्र करके घुमाया गया और सामूहिक बलात्कार किया गया। इस घटना पर प्रधानमन्त्री हमेशा की तरह चुप्पी मारकर बैठे रहे। चौतरफा आलोचना होने के बाद संसद में 2 घण्टे के अपने लम्बे चौड़े लफ़्फ़ाज़ी भरे भाषण में प्रधानमन्त्री मोदी ने मात्र 2 मिनट मणिपुर की घटना पर बात की। हालाँकि यह कोई पहली बार नहीं हुआ है। 2014 के बाद से ही संसद मोदी जी के भाषणबाजी का अड्डा बना हुआ है। इसी क्रम में बीजेपी के नेता संसद में ऐसी तमाम हरकतें कर चुके हैं जिससे, इस पार्टी का फ़ासीवादी चरित्र उजागर हो चुका है। "बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ" की डींगे हाँकने वाली इसी सरकार के कर्नाटक के दो नेता और त्रिपुरा का एक नेता संसद में बैठकर अश्लील फिल्में देखते हुए पकड़े गये थे।

आज हमारा देश एक अभूतपूर्व संकट से गुज़र रहा है। बेरोज़गारी और महँगाई का मुद्दा आज हमारे देश के मज़दूरों, ग़रीब किसानों, आम मेहनतकश आबादी और नौजवानों के लिए सबसे बड़ा मुद्दा है। लेकिन ये फ़ासिस्ट मोदी सरकार अब यह बात नहीं करती की हर साल 2 करोड़ नौकरी देने के इसके हवाई वायदे का क्या हुआ? सबके खाते में अब तक 15 लाख रुपये क्यों नहीं आये? इसके उलट यह देश की जनता का ध्यान भटकाने के लिए संसद में चीन-पाकिस्तान, हिन्दू-मुसलमान जैसे नकली मुद्दों पर बहसबाज़ी करते हैं।

संसद में तू नंगा-तू नंगा का खेल खेलती तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों की असलियत

शासक वर्ग के विभिन्न धड़ों की नुमाइन्दगी करने वाली तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों के नेता संसद के भीतर गत्ते की तलवार भाँजते तू नंगा-तू नंगा का खेल खेलते हैं। यही नेता मज़दूर वर्ग एवं समस्त मेहनतकश जनता के ख़िलाफ़ बनने वाली नीतियों पर एकमत हो जाते हैं। पूँजीपतियों के पक्ष में नीतियों को बनाने मे इन तमाम चुनावबाज़ पार्टियों मे नाममात्र का ही फर्क है। कांग्रेस अगर कुछ लोकलाज और कल्याणवाद के मुखौटे के साथ नवउदारवाद की नीतियाँ लागू करती है, तो फ़ासीवादी मोदी सरकार नंगे और बेशर्म तरीके से मेहनतकश आबादी का खून निचोड़कर, पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने के लिए मेहनतकश जनता के ख़िलाफ़ आक्रामक तरीके से नवउदारवादी नीतियाँ बनाती है, जनता के अधिकारों को छीनती है, श्रम अधिकारों को निरस्त करती है और दंगे फैलाकर जनता की एकजुटता को तोड़ती है ताकि सभी को बाँटकर हरेक पर राज किया जा सके।

ये पार्टियाँ चाहें जितना एक दूसरे पर कीचड उछाल लें, लेकिन सच्चाई तो यह है की इनका वर्गीय हित एक ही है। संसद में गप्पेबाजी करते ये नेता चुने तो जनता द्वारा जाते हैं, लेकिन संसद में पहुँचने के बाद ये अंबानी-अडानी जैसे अपने पूँजीपति आकाओं की तिजोरियाँ भरने के लिए लिए 'दिन दुनी, रात चौगुनी' गति से काम करते हैं। हमारे असली दुश्मन यही मुनाफ़ाखोर और लुटेरे हैं, जिनके किसी न किसी गिरोह की नुमाइन्दगी आज की सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ करती हैं। यह सच है कि फ़ासीवादी पूँजीवादी पार्टी होने के नाते आज भाजपा और संघ परिवार मेहनतकश जनता के लिए सबसे ख़तरनाक हैं और उसके सबसे बड़े दुश्मन हैं। फ़ासीवाद गहराते संकट के समय पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत है और इसीलिए इस समय मोदी पूँजीपति वर्ग का चहेता बना हुआ है।

आज का भारतीय पूँजीवादी जनतन्त्र सिर से पाँव तक सड़ चुका है। मेहनतकश वर्ग के सामने एकमात्र विकल्प यही है की वह पूँजीवादी संसदीय जनवाद की इस ख़र्चीली धोखाधड़ी और लूटतन्त्र को सिरे से ख़ारिज कर दे। एक नया समाजवादी जनवाद का ढाँचा खड़ा करे जिसमें, जनप्रतिनिधियों के निकाय महज बहसबाज़ी और गप्पे मारने के अड्डे ना हो। कार्यपालिका और संसद यानी विधायिका के काम करने के लिए शोषकों का अलग विशेषज्ञ वर्ग न हों। जनता, जो उत्पादन करती है, वही कानून बनाये भी और वही कानून लागू भी करे। नौकरशाही का काम भी जनप्रतिनिधियों के निकाय द्वारा ही किया जाये। नेताओं का कोई विशेषाधिकार प्राप्त अलग सामाजिक संस्तर न हो। विलासितापूर्ण जीवन शैली के बजाय उनका वेतन और जीवन स्तर भी आम उत्पादक वर्गों के समान हो। आज का पूँजीवादी समाज जिस अभूतपूर्व संकट से गुज़र रहा है, उसमें तमाम इन्साफ़पसन्द नौजवानों, मेहनतकश जनता का यह कर्तव्य बन जाता है कि, वह इस परजीवी नौकरशाही, अफ़सरशाही और सड़कर बजबजाते बुर्जुआ लोकतन्त्र को समाप्त कर, एक नया समाजवादी ढाँचा खड़ा करने की दिशा में एकजुट हो। मौजूदा फ़ासीवादी शासन और फ़ासीवादी फिरकापरस्ती के उभार ने इस कार्यभार को और भी ज़रूरत के साथ रेखांकित कर दिया है।

भाजपा शासन में चुनाव पास आते ही सरहद पर घुसपैठ क्यों बढ़ जाती है?

(पेज 1 से आगे)

सकें, इसलिए यह आम जनता के सामने नक़ली मुद्दे खड़े करते हैं और नक़ली दुश्मन पेश करते हैं जिसके सर वो अपनी सारी नाकामयाबियों का ठीकरा फोड़ सकें। नूह में हुए दंगे इसी का उदाहरण था। इस प्रकार साम्प्रदायिक तनाव भड़का कर जनता का ध्यान असल मुद्दों से हटा दिया जाता है, मुसलमान जनता के रूप में बाकी बहुसंख्यक समुदाय के सामने एक नकली दुश्मन पेश किया जाता है और यह लफ्फ़ाज़ी की जाती है कि सारी समस्याओं की जड़ मुसलमान हैं! जबकि सच्चाई यह है कि सारी समस्याओं की जड़ धन्नासेठों, मालिकों, ठेकेदारों, व्यापारियों, धनी फार्मरों का छोटा-सा वर्ग और एक मुनाफ़ा-केन्द्रित आर्थिक व्यवस्था है।

इसी तरह आजकल देश की सीमाओं पर हलचल की ख़बरें भी तेज हो गयी हैं। लगातार टीवी न्यूज़ चैनलों में, अख़बारों में और सोशल मीडिया पर यह ख़बरें छायी हुईं हैं कि मोदी के नेतृत्व में भारत ने फ़िर से सर्जिकल स्ट्राइक कर दिया है (ऐसी कई ख़बरों का सेना ने ख़ुद खण्डन किया है)। पाकिस्तान को खदेड़ने से लेकर चीन को आँख दिखाने जैसी ख़बरों को फ़िर से हवा दी जा रही है! कई घुसपैठ के वाक़यों की ख़बरें लगातार आ रहीं हैं। अगर याद हो तो ठीक ऐसा ही उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव और 2019 के लोकसभा चुनाव से पहले भी हुआ था। 2019 में चुनाव से ठीक पहले हुए पुलवामा हमले को भला कौन भूल सकता है! इसी साल अप्रैल में पुलवामा हमले के समय जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल रहे सत्यपाल मलिक ने खुलकर सामने आकर यह बात कही थी कि पुलवामा हमला को भाजपा ने चुनाव में वोट बैंक की राजनीति के लिए इस्तेमाल किया था, जिसके बाद भाजपा को इसका पुरज़ोर फ़ायदा हुआ था और यह हमला हुआ भी भाजपा सरकार के कुकर्मों की वजह से ही था। बाद में कई लोगों ने तो पुलवामा हमले को चुनाव जीतने के लिए भाजपा की साजिश भी बताया था। पुलवामा हमले के बाद हुए सर्जिकल स्ट्राइक को भी चुनाव प्रचार के तौर पर इस्तेमाल किया गया था। इस सर्जिकल स्ट्राइक के विवरण भी सरकार ने कभी नहीं बताये और इसके बारे में पूछने को ही मानो देशद्रोह घोषित कर दिया गया।

हर बात में पाकिस्तान को "क़रारा ज़वाब" देने और पाकिस्तान से भारत की तुलना करने वाले भाजपाई तब क्यूँ चुप रहते हैं जब भारत भुखमरी के मामले में वैश्विक भुखमरी सूचकांक (ग्लोबल हंगर इण्डेक्स) में पाकिस्तान ही नहीं बल्कि बांग्लादेश, नेपाल, सूडान आदि जैसे देशों से भी पीछे होता है? आपको बता दें कि 2022 की वैश्विक भुखमरी सूचकांक के अनुसार भारत 121 देशों में से 107 वें नम्बर पर था। भारत में लगभग 4500 बच्चे हर दिन भूख और कुपोषण से मर जाते हैं, जबकि लाखों टन अनाज सरकारी गोदामों में सड़ जाता है। ये तो महज़ कुछ प्रातिनिधिक आँकड़े हैं जो देश की सच्चाई बयाँ करते हैं। पर देश के हालात इससे कहीं बदतर हैं। महँगाई लगातार बढ़ती जा रही है। पक्का रोज़गार तो दूर की बात है, आज लोगों के पास रोज़गार का ही भयंकर संकट है। हर साल 2 करोड़ रोज़गार का वादा कर के सत्ता में आयी इस सरकार ने पिछले 9 सालों में लगभग साढ़े सात लाख लोगों को ही रोज़गार दिया। शिक्षा को लगातार महँगा तो किया ही जा रहा है, नयी शिक्षा नीति जैसी नीतियों की मदद से शिक्षा का साम्प्रदायीकरण किया जा रहा है और लगातार मेहनतकश आबादी को इससे दूर किया जा रहा है। नये श्रम कानूनों को लागू करने की तैयारी चल रही है, जो तमाम मज़दूरों के शोषण को और बढ़ाने की क़ानूनी छूट देगा। कोरोना काल में देश में स्वास्थ्य व्यवस्था की बदहाली का पता तो पहले ही चल गया था। कुल मिलाकर हर ज़रूरी मुद्दों पर भाजपा सरकार नंगी हो चुकी है। इसलिए ही इन्हें ग़ैर-ज़रूरी और नक़ली मुद्दों की ज़रूरत होती है जिसपर जनता को बाँट सकें।

आइए अब भाजपा की हर बात पर "देश के जवान सरहद पर लड़ रहे हैं" जैसी बातों के पीछे असली मंशा क्या है यह जानते हैं। क्या सच में भाजपा को देश के जवानों की इतनी चिन्ता है? ज़वाब है नहीं! भारत के नियंत्रक एवं लेखा महापरीक्षक (सीएजी) की संसद में पेश रिपोर्ट के मुताबिक सियाचिन, लद्दाख, डोकलाम जैसे ऊँचे क्षेत्रों में तैनात सैनिकों को ज़रूरत के अनुसार कैलोरी वाला भोजन नहीं मिल रहा। उन्हें वहाँ के मौसम से निपटने के लिए जिस तरह के ख़ास कपड़ों की ज़रूरत होती है उसकी ख़रीद में भी काफी देरी हुई। ऐसा भी कई बार हुआ है जब सशस्त्र सीमा बल के जवानों को सरकार ने वेतन के साथ उनके भत्ते देने से मना कर दिया क्योंकि सरकार के पास पैसे नहीं थे! अब ऐसे में सवाल यह बनता है कि पैसे की कमी होने पर कभी नेता-मंत्रियों की तनख्वाहें क्यों नहीं रुकतीं? क्यों उनके ऐशो-आराम में कभी कटौती नहीं की जाती? खैर, इसका जवाब अलग से देने की ज़रूरत नहीं! यह अपने आप में बताता है कि जो पुलवामा में जान गँवाने वाले जवानों के नाम पर वोट माँगता हो उसे देश के जवानों की क्या ही फ़िक्र होगी! कई मारे गये जवानों की पत्नियों को उनके लिए घोषित मुआवज़े की रकम पाने के लिए दर-दर भटकना पड़ता है और भूख हड़ताल तक का सहारा लेना पड़ता है। यही वह भाजपा सरकार है जिसने अग्निवीर योजना के ज़रिये सेना में भी ठेकाकरण की नीति अपनाई है। ऐसे में, यह स्पष्ट है कि सेना के जवान, सीमा पर घुसपैठ, सर्जिकल स्ट्राइक आदि के नाम पर राष्ट्रवाद की सिगड़ी गर्म करने वाली भाजपा की असली मंशा केवल इनके नाम पर वोट माँगना है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सेना और अर्द्धसैनिक बलों में जवानों की बुरी हालत पर सवाल उठाने वाले कई जवानों को किस तरह प्रताड़ित किया गया है। अगर आपको याद हो कि जब सीमा सुरक्षा बल के जवान तेज बहादुर यादव ने ख़राब खाने को लेकर शिकायत की थी थो मामला ठंडा होते ही उसे बर्ख़ास्त कर दिया गया था। अब आप सोच सकते हैं कि कोई भी ऐसी कोई शिकायत क्यों दर्ज कराएगा अगर उसकी नौकरी ही ख़तरे में आ जाये! और कारगिल की लड़ाई में मरने वाले सैनिकों के लिए ताबूतों की ख़रीद में घोटाला भी भाजपा की सरकार में ही हुआ था! ये परम ढोंगी लोग हैं और केवल अपने मतलब के लिए सैनिकों की दुहाई देते हैं – उसी तरह, जैसे ये हिन्दू हितों की दुहाई देकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। हिन्दू हित कोई एक चीज़ हो ही नहीं सकती, ठीक उसी प्रकार जैसे मुसलमान हित या सिख हित कोई एक चीज़ नहीं हो सकते हैं। एक ग़रीब मज़दूर हिन्दू और एक कारखाना मालिक हिन्दू के समान हित किस प्रकार हो सकते हैं?

भाजपा एक फ़ासीवादी पार्टी है जिसका मक़सद ही जनता का असल मुद्दों से ध्यान भटककार नक़ली दुश्मन खड़े करना है। हिटलर और मुसोलिनी जैसे फ़ासिस्ट इनके पूर्वज हैं जिनके नक्शे-क़दम पर आज यह समाज में साम्प्रदायिकता का ज़हर बोने में लगे हैं। बाकी पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियों से इतर यह एक विषैली विचारधारा लोगों के बीच परोसने का काम करती है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आरएसएस), जो इनकी मातृ-संस्था है, पिछले 100 सालों से इस काम में लगी है। कभी अंग्रेजों के शासन का समर्थन करने वाले ये संघी गुण्डे आज हमें राष्ट्रवाद का पाठ पढ़ा रहे हैं तथा झूठे राष्ट्रवाद के नाम पर लड़ाने और वोट बटोरने का काम कर रहे हैं। इनके द्वारा फैलाया गया साम्प्रदायिक ज़हर आज समाज के पोर-पोर में फैला हुआ है और इसे दूर करना आज का सबसे ज़रूरी काम है। इससे पहले भी चुनाव से ठीक पहले ही गुजरात दंगे, मुज्जफरनगर दंगे, 90 के दशक में बाबरी-मस्जिद और राम मन्दिर के नाम पर दंगे हुए थे। इनके तमाम संगठन जैसे विश्व हिन्दू परिषद्, हिन्दू युवा वाहिनी, बजरंग दल चुनाव आने के ठीक पहले अचानक से सक्रिय हो जाते हैं और धार्मिक त्योहारों या ऐसे किसी भी अवसर को दंगों में बदलने से नहीं चूकते। नूंह में अभी दंगे भड़काने के प्रयासों में भाजपा और संघ परिवार के लुच्चे-लफंगों के दल क्यों लगे हुए हैं? क्योंकि 2024 का लोकसभा चुनाव भी नज़दीक है और हरियाणा का विधानसभा चुनाव भी नज़दीक है। जनता को रोज़गार और महँगाई से मुक्ति दिलाने, स्त्रियों को सुरक्षा मुहैया कराने, बच्चों व युवाओं को निशुल्क, समान व स्तरीय शिक्षा मुहैया कराने में नाकाम रहने के बाद भाजपा के पास दंगे-फ़साद करवाने और सीमा पर घुसपैठ के नाम पर राष्ट्रवाद का फर्ज़ीवाड़ा करने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है।

आज बिकी हुई गोदी मीडिया की मदद से यह काम और भी आसान हो गया है। साथ में इनके आयीटी-सेल सोशल मीडिया के ज़रिये इसी काम में लगे हुए हैं। फ़ेक न्यूज़ फ़ैलाकर यह पहले से ही लोगों के अन्दर ज़हर भरने का काम कर रहे हैं, पर चुनाव के आते ही पाकिस्तान, चीन और बांग्लादेश के हमले का डर यह लोगों के दिमाग में डालना शुरू कर देते हैं जिनका सच्चाई से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं होता। लेकिन हर झूठ की एक उम्र होती है। आज जनता के बीच से भी संघ परिवार और भाजपा सरकार द्वारा फैलायी जा रही साम्प्रदायिकता और फिरकापरस्ती पर सवाल उठने लगे हैं।

हमें एक बात समझनी होगी, चाहे पुलवामा हमले में मारे गये सिपाही हों, देश की सीमाओं पर तैनात जवान या फ़िर दंगों का शिकार कोई व्यक्ति, ये हमारे-आपके जैसे मेहनतकश घरों के ही बेटे-बेटियाँ होते हैं। कभी भी देश की सरहद पर किसी नेता-मंत्री या पूँजीपति के बेटे-बेटियाँ लड़ने नहीं जाते। इनके बच्चे विदेश के किसी बड़े कॉलेजों में पढ़ रहे होते हैं या बीसीसीआयी के सचिव जैसे बड़े पद पर विराजमान होते हैं। न ही धन्नासेठों और उनके चरम सेवक संघ परिवार के नेताओं के बच्चे कभी त्रिशूल-तलवार हाथ में लेकर दंगा करने जाते हैं। वे तो विदेशों में पढ़ाई करते हैं और फिर नोट छापते हैं। इस मूर्खता में हमें बहाया जाता है, हमारे बच्चे फिज़ूल के मसलों पर लड़ते-कटते हैं, हमारे ही घर जलते हैं। अत: हमें भाजपा व संघ परिवार के असली फ़ासीवादी एजेण्डे को पहचानना होगा। हमें समझना होगा कि हमारा असली मुद्दा रोज़गार, महँगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का है। यही वे मुद्दे हैं जो सीधे हमारी ज़िन्दगी से जुड़ते हैं। हमें पक्के रोज़गार की, समान व निःशुल्क स्वास्थ्य व शिक्षा की, अप्रत्यक्ष कर को समाप्त करके व पूँजीपतियों पर प्रगतिशील प्रत्यक्ष कर लगाकर महँगाई पर रोक लगाने की, ठेका प्रथा ख़त्म करने की माँगों के लिये लड़ना होगा। यही वे अधिकार हैं जिसके लिए लड़कर हम एक बेहतर भविष्य का सपना देख सकते हैं।

जन्मदिवस (28 सितम्बर) के अवसर पर

क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है — अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाज़ारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढँकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और ज़बर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति ज़्यादा दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठकर रंगरलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं। — भगतसिंह

मेहनतकशो चौकस रहो, दंगाइयों की कोई चाल कामयाब न होने पाये!

(पेज 1 से आगे)

एंकर खुलेआम दंगाई बातें कर रहे हैं। लेकिन गोदी मीडिया के दंगाई प्रचार का पिछले 3-4 सालों में असर यह हुआ है कि जनता का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा इसके चैनलों जैसे ज़ी न्यूज़, रिपब्लिक न्यूज़, आज तक, आदि को देखना छोड़ चुका है। जिस सोशल मीडिया का इस्तेमाल एक दौर में फ़ासीवादी संघ परिवार ने अपनी फ़ासीवादी फ़िरकापरस्त राजनीति को फैलाने में कुशलतापूर्वक किया था, वहाँ पर भी स्वत:स्फूर्त रूप से जनता द्वारा डाली जा रही मोदी सरकार-विरोधी सामग्री जैसे मीम्स, शॉर्ट्स, जीआयीएफ़ व वीडियो आदि की ऐसी बाढ़ आयी है कि भाजपा का आयीटी सेल पूँजी की विराट ताक़त के बावजूद उससे निपट नहीं पा रहा है। वही भाजपा जो कुछ वर्षों पहले तक साम्प्रदायिक व्हाट्सऐप सन्देशों, यूट्यूब वीडियो, फ़ेसबुक पोस्टों पर रोकथाम करने की जनवादी माँग पर "अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता" का हवाला दे रही थी ताकि उसके नफ़रती चिण्टू सोशल मीडिया पर फ़ासीवादी कचरा फैलाने के लिए आज़ाद रहें, अब सोशल मीडिया पर लगाम कसने के लिए क़ानून लाने की बातें कर रही है! इसी से पता चलता है कि सोशल मीडिया पर भी एक अच्छी-ख़ासी आबादी मोदी सरकार के झूठ-फ़रेब और साम्प्रदायिक एजेण्डा के प्रति सशंकित हो चुकी है।

सियासी हवा के कुछ बदलते रुख़ के पीछे जो सबसे अहम कारण है वह है पूँजीवादी आर्थिक संकट के दौर में पूँजीपति वर्ग को फ़ायदा पहुँचाने के लिए मोदी सरकार द्वारा लागू की गयी लूट-खसोट की वे नीतियाँ, जिनके नतीजे के तौर पर देश की व्यापक आम जनता को अभूतपूर्व महँगाई और बेरोज़गारी का सामना करना पड़ रहा है। यह बुनियादी कारक है। अन्य सभी कारक सहायक हैं।

इस समय हमारे देश में महँगाई का सबसे प्रमुख तात्कालिक कारण है मोदी सरकार द्वारा आम मेहनतकश जनता पर अभूतपूर्व रूप से बढ़ाया गया अप्रत्यक्ष कर और पूँजीपतियों को कर्ज़-माफ़ी से लेकर बैंकों में जमा जनता का धन लेकर विदेश भागने की छूट, पूँजीपतियों को औने-पौने दामों पर सौंपे जा रहे संसाधन और उन्हें प्रत्यक्ष करों से दी जा रही भारी छूट। पूँजीपतियों को दी जा रही इन सारी छूटों के कारण सरकारी ख़ज़ाने को जो नुकसान हो रहा है, मोदी सरकार उसकी भरपाई आम मेहनतकश जनता पर अप्रत्यक्ष करों, तरह-तरह के शुल्कों को लादकर कर रही है। नतीजा है भयंकर महँगाई।

उसी प्रकार, आज अभूतपूर्व बेरोज़गारी के लिए भी फ़ासीवादी मोदी सरकार की ही पूँजीपरस्त नीतियाँ ज़िम्मेदार हैं। निजीकरण और पूँजीपतियों को औने-पौने दामों पर जनता की सम्पत्ति बेचने की जो आँधी मोदी सरकार ने चलायी है, वह आज तक आज़ाद भारत की किसी पूँजीवादी सरकार ने इस क़दर नहीं चलायी है। निजीकरण, ठेकाकरण, कैज़ुअलीकरण और दिहाड़ीकरण के कारण नौकरियाँ समाप्त-सी हो गयी हैं। श्रम क़ानूनों में परिवर्तन कर इस पाशविक शोषण और लूट को भी क़ानूनी जामा पहनाने की तैयारियाँ मोदी सरकार ने कर रखी हैं। आज़ाद भारत के समूचे इतिहास में जनता ने ऐसी बेरोज़गारी भी कभी नहीं देखी है।

साथ ही, मोदी सरकार व भाजपा की अन्य सरकारों के खाऊ-पियू नेताओं के भ्रष्टाचार ने सारी सीमाएँ लाँघ ली हैं। देश के सभी भ्रष्टाचारी, चाहे वे किसी भी पूँजीवादी दल में हों, भाजपा की वाशिंग मशीन में घुसकर मर्यादा पुरुषोत्तम हो जा रहे हैं चाहे वह हेमंत बिस्व सर्मा हो या अजित पवार। भ्रष्टाचार के कारण जो करोड़ों के वारे-न्यारे हो रहे हैं, वह भी आम जनता का ही धन है और उसकी भरपाई भी फिर जनता से ही करवाई जाती है।

दिक्कत यह है कि देश के अम्बानी, अडानी, टाटा-बिड़ला यही खेल खेलने के लिए मोदी सरकार को सत्ता में लाये थे और अब इस खेल को रोकना मोदी सरकार के बस की बात नहीं है। पूँजीवादी आर्थिक संकट तो बढ़ती बेरोज़गारी व महँगाई का ढाँचागत कारण है ही, लेकिन मोदी सरकार की पूँजीपरस्त नीतियाँ और उन नीतियों को भी कुप्रबन्धन व भ्रष्टाचार के साथ लागू करने का नतीजा यह है कि अब तक के महँगाई और बेरोज़गारी के सारे रिकॉर्ड ध्वस्त हो गये हैं। **महँगाई पर काबू पाने और रोज़गार सृजन के लिए पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे में भी जितनी कल्याणकारी नीतियाँ सम्भव हैं, फ़ासीवादी मोदी सरकार उन्हें लागू कर ही नहीं सकती क्योंकि फ़ासीवादी मोदी सरकार को 2014 और फिर 2019 में पूँजीपति वर्ग द्वारा भारी आर्थिक व राजनीतिक समर्थन से सत्ता में पहुँचाने का मकसद ही था, फ़ासीवादी धक्काज़ोरी और दमनकारी तौर-तरीकों के साथ पूँजीपरस्त नीतियों को लागू करवाना, जनता के प्रतिरोध को कुचलना और जनता को धर्म के नाम पर और जाति के नाम पर बाँटकर आपस में लड़ाना ताकि वह संगठित हो ही न सके।** अब जबकि पूँजीपति वर्ग ने मोदी सरकार को सत्ता में पहुँचाया ही ये सब करने के लिए था, तो वह कुछ अलग भला कैसे कर सकती है?

यानी आर्थिक नीतियों में पूँजीवादी दायरे के भीतर कोई ख़ास बदलाव करना मोदी सरकार के लिए सम्भव ही नहीं है। ऐसा करने पर वह पूँजीपति वर्ग का समर्थन खो बैठेगी। **नतीजतन, मोदी सरकार के पास 2024 के चुनावों में विजय को हासिल करने के लिए दो ही हथियार बचते हैं, जो दोनों ही फ़ासीवादी राजनीति की विशिष्टता हैं : साम्प्रदायिकता और अन्धराष्ट्रवाद।** साम्प्रदायिकता के तन्दूर को गर्म करने का काम शुरू हो चुका है, जैसा कि नूंह की घटनाएँ ज़ाहिर कर रही हैं। उसी प्रकार, आतंकी घुसपैठ की घटनाएँ भी सहसा बढ़ने लगी हैं! साम्प्रदायिकता और अन्धराष्ट्रवाद दोनों की आग भड़काने के लिए अयोध्या के राम मन्दिर पर भी सहसा आतंकी हमला हो जाये तो कोई ताज्जुब की बात नहीं होगी, ऐसा अन्देशा भाजपा के शासन में ही कई राज्यों के राज्यपाल रहे सत्यपाल मलिक ज़ाहिर कर चुके हैं। अब जब इतना भीतर का और भाजपा सरकार के क़रीब रह चुका व्यक्ति यह बोल रहा है, तो इसे निश्चित ही नज़रन्दाज़ नहीं किया जा सकता है। मलिक ने पहले भी पुलवामा हमले की पोल खोल दी थी, जिससे 2019 के चुनावों के पहले वोटों के ध्रुवीकरण की भाजपा की साज़िश बेनक़ाब हो चुकी है। हमला करने वाले आतंकियों को अपने गाड़ी में लेकर घूम रहे भाजपा के चहेते डीएसपी देविन्दर सिंह के मामले का क्या हुआ, यह सहसा सभी न्यूज़ चैनलों से ग़ायब हो गया! ऐसे में, सत्यपाल मलिक द्वारा ज़ाहिर की गयी आशंका, कि भाजपा सत्ता के लिए किसी भी हद तक जा सकती है, मायने रखती है। और ख़ास तौर पर जब मोदी सरकार की स्वीकार्यता जनता में इतने निचले स्तर पर हो, तो बौखलाहट में फ़ासीवादी ताक़तें किस हद तक जा सकती हैं, यह देश का मेहनतकश अवाम पहले भी देख चुका है। नूंह में दंगे भड़काने से लेकर उत्तर प्रदेश के बनारस में ज्ञानवापी मस्जिद में त्रिशूल और शिवलिंग ढूँढकर नये सिरे से मन्दिर-मस्जिद का झगड़ा शुरू करने तक हर प्रयास संघ परिवार और मोदी सरकार लगातार कर रहे हैं। **अगर आम मेहनतकश और मज़दूर आबादी ने बेरोज़गारी और महँगाई के मसले को छोड़कर इन फ़र्ज़ी और बकवास मुद्दों पर ज़रा भी ध्यान दिया तो उन्हें इसका भयंकर नतीजा भुगतना पड़ेगा, यह तय है।**

नूंह की स्थिति एक बात और भी ज़ाहिर कर रही है। **यदि कहीं पर संघ परिवार के दंगाइयों की लहर में व्यापक मेहनतकश जनता नहीं बहती है, तो वे पुलिस प्रशासन व सशस्त्र बल का सहारा लेकर मुसलमान आबादी पर अत्याचार करेंगे, उनके बीच हत्याकाण्ड और दंगे करेंगे।** नूंह में पहली बार अपने नापाक मंसूबों में नाकाम होने के बाद, बजरंग दल और विश्व हिन्दू परिषद के दंगाई, बलवाई और गुण्डे लगातार भड़काऊ बयानबाज़ियाँ और साम्प्रदायिक "पंचायतें" कर रहे हैं, मेवात की सीमा पर दंगाई सभाएँ कर रहे हैं और यह सारा काम पुलिस संरक्षण में हो रहा है। 28 अगस्त को फिर से विहिप व बजरंग दल की "शोभा यात्रा" को नूंह में निकालने की घोषणा की गयी है। **ज़ाहिर है, अगर यह यात्रा निकलती है तो इसका मतलब होगा, पुलिस व सशस्त्र बल के संरक्षण में मोनू मानेसर और बिट्टू बजरंगी जैसे साम्प्रदायिक गुण्डे और हत्यारे नूंह में बवाल करेंगे, दंगे करेंगे और हत्याकाण्ड भी कर सकते हैं। बिना इस राजकीय संरक्षण के इन नफ़रती चिण्टुओं की पैण्ट गीली हो जाती है। लेकिन जब सत्ता में ही फ़ासीवादी बैठे हों और जब राज्यसत्ता के समस्त निकायों का ही भीतर से फ़ासीवादीकरण हो चुका हो, तो ऐसे फ़ासीवादी गुण्डों को कोई डर नहीं रहता। जब दंगाइयों के सरदार ही सत्ता में हों, तो भला डर होगा भी कैसे?** हर रोज़ विहिप व बजरंग दल के गुण्डों की ओर से नफ़रती और भड़काऊ बयान व वीडियो जारी किये जा रहे हैं, दूसरी तरफ़ कोर्ट की फटकार के बावजूद खट्टर सरकार नूंह में मुसलमान आबादी के घरों पर बुलडोज़र चला रही है, मुसलमान युवकों की गिरफ़्तारियाँ हो रही हैं और संघी दंगाइयों से आत्मरक्षा करने का दण्ड उन्हें दिया जा रहा है। एक तरह से उन्हें बताया जा रहा है कि दंगाई फिर अपने आपको नूंह के लोगों का "जीजा" बताते हुए, उनका अपमान करते हुए, उनके इलाक़े में बलवा, दंगा, तोड़फोड़, मारपीट व हत्याएँ करेंगे, लेकिन इस बार नूंह के मुसलमान अपनी आत्मरक्षा करने का भी प्रयास न करें। चुपचाप उनके साथ जो भी किया जाय वह झेल लें! यही मोदी का "नया भारत" और "(अ)मृतकाल" है।

संघी दंगाइयों के लिए एक ही बात चिन्ताजनक है : नूंह व आस-पास के इलाक़ों में इन तमाम बेहूदा हरक़तों के बावजूद हरियाणा में और देश में भाजपा का सितारा बुलन्द नहीं हो पा रहा है। व्यापक जाट आबादी के मेहनतकश व मध्यवर्गीय हिस्सों ने व कुछ इलाक़ों में मौजूद सिख आबादी ने मेवात के मुसलमान मेहनतकशों के साथ एकता ज़ाहिर की है और भाजपा के दंगाई चरित्र को सिरे से नकार दिया है। बाकी हिन्दू जनता के बड़े हिस्से ने भी मुखर या मौन रूप में संघी फ़ासिस्टों की दंगाई चालों को नकार दिया है। ख़ुद नूंह में मौजूद हिन्दू आबादी की बहुसंख्या ने दंगाइयों का साथ नहीं दिया है और इलाक़े में शान्ति को बिगाड़ने के लिए विहिप व बजरंग दल की निन्दा और भर्त्सना ही की है।

लेकिन फ़ासीवादियों के लिए पीछे हटना मुश्किल होता है। इससे उनकी अजेयता का भ्रम टूट जाता है और इनकी कतार में मौजूद दंगाई चवन्नियों-अठन्नियों का मनोबल भी टूट जाता है, जैसे कि बिट्टू बजरंगी व मोनू मानेसर। इसलिए बाह्य और आन्तरिक दोनों ही कारणों से मोदी सरकार और भाजपा की खट्टर सरकार मेवात में साम्प्रदायिक तनाव और दंगों को राजकीय संरक्षण में भड़काते रहने के अलावा और कुछ नहीं कर सकती।

देश के आम लोगों में मोदी सरकार को लेकर पूँजीपतियों की अकूत आर्थिक ताक़त के आधार पर चलाये गये आक्रामक फ़ासीवादी प्रचार के कारण जो भी वहम थे, वे टूट रहे हैं। 10 साल बहुत होते हैं। **नोटबन्दी, कोरोनाकाल व लॉकडाउन के दौरान आपराधिक कुप्रबन्धन, अभूतपूर्व महँगाई और बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार के टूटते रिकॉर्ड, अप्रत्यक्ष करों का भयंकर बोझ...मोदी सरकार के 10 साल के ये कारनामे अब साम्प्रदायिक प्रचार पर थोड़े भारी पड़ने लगे हैं।** ज़ाहिर है, यह केवल शुरुआत है और इसकी वजह से क्रान्तिकारी ताक़तों और मज़दूर वर्ग को ज़रा भी निश्चिन्त या सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए फ़ासीवादी ताक़तें अपनी गिरावट के दौर में हमेशा ज़्यादा आक्रामक हुआ करती हैं। हिटलर की नात्सी पार्टी को जर्मनी के आख़िरी स्वतन्त्र चुनावों में अपनी सीटों में 34 सीटों की भारी गिरावट का सामना करना पड़ा था। जुलाई 1932 के चुनावों में नात्सी पार्टी 230 सीटें मिली थीं, जबकि नवम्बर 1932 के चुनावों में उसे केवल 196 सीटें ही मिल पायी थीं। मार्च 1933 में नात्सी पार्टी ने राज्यसत्ता में अपनी घुसपैठ के बूते स्वतन्त्र चुनाव ही नहीं होने दिये थे और 288 सीटें जीतकर पहले गठबन्धन सरकार बनायी और फिर आपवादिक क़ानून लागू करके, औपचारिक तौर पर संसदीय जनतन्त्र को ही ख़त्म कर दिया। **यानी, खुली तानाशाही को लागू करने के ठीक**

(पेज 12 पर जारी)

मेहनतकशो चौकस रहो, दंगाइयों की कोई चाल कामयाब न होने पाये!

(पेज 11 से आगे)

पहले जर्मनी में नात्सी पार्टी की लोकप्रियता गिरावट पर थी।

आज दुनिया के किसी भी देश में खुली तानाशाही लागू कर पूँजीवादी संसदीय जनवाद को ख़त्म करना फ़ासीवादी शक्तियों की मजबूरी नहीं है। आज का फ़ासीवाद जर्मनी व इटली में 20वीं सदी के आरम्भ में आये फ़ासीवाद से कुछ मामलों में अलग है। पहली बात तो यह है कि भारत जैसे देशों में संघ परिवार जैसा फ़ासीवादी संगठन पिछले लगभग 100 वर्षों से मौजूद है और समाज और राज्यसत्ता में लम्बी प्रक्रिया में अपनी पकड़ बनाने का काम करते रहे हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आज़ादी के पहले उपनिवेशवादियों की दलाली करता रहा और क्रान्तिकारियों व स्वतन्त्रता-योद्धाओं के ख़िलाफ़ अंग्रेज़ों से मुखबिरी करता रहा। उस वक़्त भी देश में साम्प्रदायिकता फैलाकर यह औपनिवेशिक सत्ता के हाथों में खेलता रहा था। आज़ादी के बाद इसने योजनाबद्ध तरीके से राज्यसत्ता के तमाम निकायों में, पुलिस व सेना में, नौकरशाही में, न्यायपालिका में अपने लोग घुसाने शुरू किये। इसमें कांग्रेस के दक्षिणपंथियों और फिर भारत के लोहिया व जयप्रकाश नारायण जैसे समाजवादियों ने और साथ ही समूचे पूँजीपति वर्ग ने भरपूर मदद की। 1980 का दशक आते-आते संघ परिवार ने अपने अनुषंगी संगठनों व संस्थाओं का एक विराट ताना-बाना देश में खड़ा कर लिया था। देश में आर्थिक संकट था, पब्लिक सेक्टर पूँजीवाद सन्तृप्ति बिन्दु पर था, टुटपुँजिया वर्गों का एक हिस्सा संकट में सर्वहाराकरण से भयभीत था, तो दूसरा हिस्सा पूँजीपति बनने और श्रम को लूटने की प्रक्रिया को आसान बनाने के सपने सँजोये हुए था। **इन दोनों ही हिस्सों के अस्पष्ट और धुंधले असन्तोष, आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा व अनिश्चितता को छह दशकों से अपना राजनीतिक व सांगठनिक सुदृढ़ीकरण कर रहे संघ परिवार ने 'राम मन्दिर आन्दोलन' के ज़रिये भटकाया, ग़लत मोड़ दिया और उसके गुस्से के निशाने पर एक नकली दुश्मन को रख दिया, यानी मुसलमानों को।** यानी, फ़ासीवादी ताक़तों ने वर्ग अन्तरविरोधों को एक ग़लत राजनीतिक अभिव्यक्ति दी। यहीं से चुनावी राजनीति में भी भाजपा का उभार होता है, जो 1992 में बाबरी मस्जिद के ध्वंस, देश भर में व्यवस्थित तरीके से साम्प्रदायीकरण, 1998 में वाजपेयी सरकार के बनने, 2002 में गुजरात दंगों के ज़रिये आगे बढ़ता है।

2004 में वाजपेयी सरकार देश में भयंकर महँगाई व बेरोज़गारी के कारण चुनाव हारती है। 2014 तक कांग्रेस के नेतृत्व वाले यूपीए का शासन होता है, जिसके पहले कार्यकाल में मज़दूर वर्ग के जयचन्दों, यानी सीपीआयी, सीपीएम जैसे संसदीय वामपंथियों के दबाव व सलाह के कारण कुछ दिखावटी कल्याणकारी नीतियाँ लागू होती हैं। लेकिन 2007 में पूँजीवाद की 21वीं सदी की पहली महामन्दी के फटने के साथ भारत के पूँजीपति वर्ग को यह कल्याणवाद नागवाँर गुज़रने लगता है और मन्दी व मुनाफ़े की गिरती दर से बिलबिलाया हुआ पूँजीपति वर्ग तेज़ी से दक्षिणपंथी प्रतिक्रिया व फ़ासीवाद की शरण में जाता है, ताकि मज़दूर वर्ग व मेहनतकश आबादी को दबाकर रखा जाय, उसकी औसत मज़दूरी को गिराया जाय, कार्यदिवस बढ़ाया जाय, श्रम की सघनता बढ़ायी जाय और मुनाफ़े की दर को बढ़ाया जा सके। पूँजीपति वर्ग के भारी समर्थन व खर्चे के बूते बनायी गयी फ़र्ज़ी छवि के आधार पर नरेन्द्र मोदी के हाथ में 2014 में सत्ता आती है। उसके बाद से राज्यसत्ता के बचे-खुचे निकायों में भी फ़ासीवादी घुसपैठ तेज़ी से जारी रहती है और आज यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि भारत की पूँजीवादी सत्ता के निकायों में फ़ासीवादी 'टेक-ओवर' की प्रक्रिया गुणात्मक रूप से एक नयी मंज़िल में पहुँच चुकी है।

आज न तो भारत के पूँजीपति वर्ग को और न ही फ़ासीवादी शक्तियों को इस बात की ज़रूरत है कि 1933 में नात्सी पार्टी के समान कोई आपवादिक क़ानून लाकर पूँजीवादी संसदीय जनवाद को ख़त्म किया जाय। आज इस खोल को बनाये रखते हुए फ़ासीवादी शक्तियाँ वह सबकुछ कर सकती हैं, जो उन्होंने बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जर्मनी और इटली में किया था।

निश्चित ही इस बदलाव का यह अर्थ भी है कि बुर्जुआ चुनावों में फ़ासीवादी ताक़तें, यानी भाजपा, हार भी सकती है और अस्थायी तौर पर सत्ता से बाहर जा सकती हैं। लेकिन इससे राज्यसत्ता के निकायों में फ़ासीवादी घुसपैठ कम नहीं होने वाली है। साथ ही, किसी अन्य पूँजीवादी पार्टी या पूँजीवादी पार्टी के गठबन्धन की सरकार का कोई भी दौर पूँजीवादी आर्थिक संकट के जारी रहने की सूरत में (जिसकी गुंजाइश सबसे ज़्यादा है) फिर से फ़ासीवादी भाजपा की चुनावी जीत की ज़मीन तैयार करेगी और यह जीत और भी बड़े पैमाने पर हो सकती है। **बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध में फ़ासीवाद का सत्ता पर आरोहण इसी प्रकार होगा और होता रहा है: कई दौरों या ज्वरों के ज़रिये, जिसमें हर दौर के साथ फ़ासीवाद और भी आक्रामक होता जायेगा।**

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के फ़ासीवादी सत्ता के अनुभवों से पूँजीपति वर्ग ने और उसके सबसे प्रतिक्रियावादी हिस्सों ने भी सबक लिया है। किसी प्रकार का आपवादिक तानाशाहाना क़ानून लाकर पूँजीवादी जनवाद को औपचारिक रूप से समाप्त करना उनकी स्वीकार्यता और वर्चस्व को कमज़ोर करता है और ऐसा होने पर एक बार हिंस्र तौर पर किसी विद्रोह या युद्ध के नतीजे के तौर पर सत्ता से जाने के बाद लम्बे समय तक सत्ता में वापसी सम्भव नहीं रह जाती। **इसलिए आपवादिक क़ानूनों को लाना फ़ासीवादी शक्तियों के लिए वांछनीय विकल्प नहीं है।** साथ ही, पूँजीवादी जनवाद आज जिस मरी-गिरी हालत में पहुँच गया है, उसमें पूँजीपति वर्ग को इसे औपचारिक रूप से समाप्त कर खुली तानाशाही लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इस प्रकार की खुली तानाशाही आने की कोई सम्भावना ही नहीं है। वजह यह है कि पूँजीपति वर्ग और उसकी नुमाइन्दगी करने वाली पूँजीवादी पार्टी व उसके नेता के बीच भी एक अन्तर होता है। पूँजीवादी पार्टी व उसके नेता पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक व आर्थिक हितों की नुमाइन्दगी करते हैं, लेकिन पूँजीपति वर्ग से उनकी एक **सापेक्षिक स्वायत्तता** भी होती है। वजह यह है कि उनका काम ही किसी एक पूँजीपति या कुछ पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करना नहीं बल्कि समूचे पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करना होता है। दूसरी बात यह कि पूँजीवादी पार्टी व उसके नेता वर्ग के स्वयं अपने वैयक्तिक हित भी इसी प्रक्रिया में विकसित होते हैं। **इसलिए मोदी और भाजपा, जो किसी भी हालत में सत्ता को नहीं छोड़ना चाहते, हार की आशंका में देश में आपातकाल लागू करने या कोई आपवादिक क़ानून लाने की दूरगामी भूल कर सकते हैं और इस सम्भावना के कम होने के बावजूद इससे पूरी तरह से इंकार नहीं किया जा सकता है।** इसके लिए वे अपने पीछे खड़े टुटपुँजिया वर्ग के प्रतिक्रियावादी आन्दोलन का एक बटखरे के तौर पर इस्तेमाल कर पूँजीपति वर्ग का समर्थन हासिल करने का भी प्रयास कर सकते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया अन्तरविरोधों और अनिश्चितताओं से भरी हुई है, टुटपुँजिया वर्गों के बहुलांश का भाजपा व मोदी को समर्थन भी कोई स्थायी रूप से पक्की चीज़ नहीं है और देश में आर्थिक व सामाजिक बेहाली की स्थिति फ़ासीवादियों के इन प्रयासों पर भारी भी पड़ सकती है, जिसका इस्तेमाल अन्य पूँजीवादी पार्टियाँ करने का प्रयास निश्चय ही करेंगी और कर भी रही हैं। ऐसे में, 2024 के चुनावों के पहले संघ परिवार व भाजपा देश को भयंकर दंगों, फ़िरकापरस्त मार-काट, हिंसा में झोंकने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाएँगे। या वे किसी आतंकी हमले के बहाने या पाकिस्तान से किसी छोटे पैमाने के युद्ध को भड़काकर अन्धराष्ट्रवाद की लहर फैला सकते हैं या उसे बहाना बनाकर आपातकाल थोप सकते हैं, चुनावों को स्थगित कर सकते हैं। निश्चित तौर पर, फ़ासीवादी ताक़तें इस विकल्प को अपने लिए खुला रखे हुए हैं, चाहे इनकी सम्भावना कितनी भी कम क्यों न हो।

इन सभी सम्भावनाओं के मद्देनज़र मज़दूर वर्ग व आम मेहनतकश आबादी के सामने क्या चुनौतियाँ और कार्यभार हैं?

सबसे अहम बात है हमारा यह दृढ़ संकल्प कि किसी भी क़ीमत पर साम्प्रदायिकता व अन्धराष्ट्रवाद की लहर में नहीं बहना है चाहे भाजपा व संघ परिवार कितना भी प्रयास करें और हमारी ज़िन्दगी के असल मुद्दों यानी बेरोज़गारी व महँगाई से जुड़ी हमारी माँगों पर अडिग रहना है। यह याद रखना है कि भाजपा व मोदी सरकार आम मेहनतकश जनता की सबसे बड़ी दुश्मन और धन्नासेठों, अमीरज़ादों व मालिकों की सबसे बड़ी दोस्त है। अपना कोई भी राजनीतिक फैसला लेते हुए इस बात को याद रखें।

दूसरी बात यह है कि कोई भी अन्य पूँजीवादी पार्टी या पूँजीवादी पार्टियों का गठबन्धन अगर 2024 में भाजपा को हरा भी देता है (जो सम्भावना निश्चित तौर पर मौजूद है) तो भी यह भारत में फ़ासीवाद की निर्णायक हार नहीं होगी। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और इक्कीसवीं सदी में फ़ासीवाद की निर्णायक पराजय का सवाल मज़दूर क्रान्ति और मज़दूर सत्ता से जुड़ा हुआ है। उसके बिना फ़ासीवाद की फैसलाकुन हार मुमकिन नहीं है। किसी भी अन्य पार्टी या गठबन्धन की सरकार आना केवल मज़दूर वर्ग व आम मेहनतकश आबादी को ज्यादा से ज्यादा तात्कालिक राहत और अपनी क्रान्तिकारी तैयारी करने की कुछ मोहलत दे सकता है; इससे ज़्यादा कुछ भी नहीं। कांग्रेस या किसी तीसरे मोर्चे की सरकारों की नीतियों ने ही हमेशा फ़ासीवादी भाजपा के सत्ता तक पहुँचने का रास्ता साफ़ किया है और आम पूँजीवादी आर्थिक संकट के दौर में और कुछ हो भी नहीं सकता है।

तीसरी बात यह कि आज से ही यदि हम रोज़गार, महँगाई से आज़ादी, निशुल्क व समान शिक्षा, निशुल्क व समान चिकित्सा तथा आवास के अधिकार की ठोस माँगों पर अपने क्रान्तिकारी जनसंगठनों व यूनियनों के तहत जुझारू जनान्दोलन नहीं खड़ा करते, तो न तो 2024 में फ़ासीवादियों की चुनावी हार को सुनिश्चित किया जा सकता है और न ही इन माँगों पर 2024 में बनने वाली किसी भी सरकार द्वारा सुनवाई को सुनिश्चित किया जा सकता है। इन जुझारू जनान्दोलनों के बिना हम असंगठित ही रहेंगे, कमज़ोर ही रहेंगे और हमें खण्ड-खण्ड में बाँटकर हम पर हुकूमत करने की फ़िरकापरस्त ताक़तों की चाल भी कामयाब होती रहेगी, क्योंकि जनता की सच्ची, जुझारू, सेक्युलर व क्रान्तिकारी एकता संघर्षों के ज़रिये ही बनती है, "प्यार और मानवतावाद" के उपदेशों के ज़रिये नहीं। साथ ही, अगर हम संगठित नहीं होंगे तो कोई भी पूँजीवादी सरकार बिना किसी अर्थपूर्ण प्रतिरोध के उन्हीं नवउदारवादी आर्थिक नीतियों को आराम से लागू करना जारी रखेगी, जिसके फल बेरोज़गारी, महँगाई और भ्रष्टाचार के रूप में हमें अभी मिल रहे हैं।

चौथी बात, इन जनान्दोलनों को एक सूत्र में पिरोने के लिए देश में **सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी यानी देश में क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का निर्माण और गठन बेहद आवश्यक है।** ऐसी पार्टी के बिना बड़े से बड़े जनान्दोलन भी कालान्तर में या तो बिखर जाते हैं या फिर कुछ तात्कालिक आर्थिक माँगों के पूरा हो जाने पर विसर्जित हो जाते हैं। सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी ही इन जनान्दोलनों को एकजुट कर सकती है, उन्हें एक ठोस कार्यक्रम दे सकती है, उन्हें एक आम राजनीतिक लक्ष्य दे सकती है।

इन चारों कार्यभारों को ध्यान में रखते हुए आज से ही सर्वहारा वर्ग के उन्नत तत्वों व मेहनतकश वर्गों का पक्ष चुनने वाले क्रान्तिकारियों को तैयारियाँ और काम शुरू कर देना होगा। आने वाला समय तीखे वर्ग संघर्ष का समय होगा। अगर सर्वहारा वर्ग एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर अपने आपको संगठित नहीं करेगा, अगर वह आम मेहनतकश जनता के बीच पूँजीवादी विचारों व राजनीति के वर्चस्व को तोड़ने के लिए सतत् प्रचार नहीं करेगा, उसे संगठित नहीं करेगा, उसे नेतृत्व नहीं देगा, तो आने वाले वर्ग युद्ध में वह जीतने की उम्मीद नहीं कर सकता है।

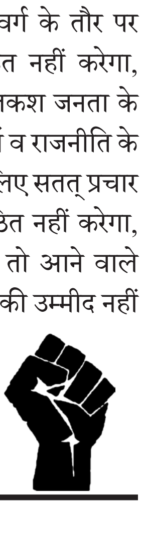

मोदी सरकार के घोटालों की पोल खोलती नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) की हालिया रिपोर्ट

● आशीष

नियन्त्रण एवं महालेखा परीक्षक (कैग) की हालिया रिपोर्ट मोदी सरकार के कई बड़े घपलों की पोल खोलती है। कैग की रिपोर्ट आने के बाद गोदी मीडिया ने चुप्पी के षड्यन्त्र के ज़रिये इसे दबाने का भरपूर प्रयास किया। 'बहुत हुआ भ्रष्टाचार-अबकी बार मोदी सरकार' जैसे जुमले की पोल तो काफ़ी पहले ही खुल चुकी है। अब कैग की हालिया रिपोर्ट तथाकथित साफ़ छवि वाली सरकार की काली करतूत को और खुले तौर पर लोगों के समक्ष उजागर करती है। आइए अब कैग की रिपोर्ट में आये घोटाले की चर्चा करते हैं।

कैग की रिपोर्ट में सड़क एवं परिवहन मन्त्रालय के घोटाले का ज़िक्र है। द्वारका एक्सप्रेस-वे के एक किलोमीटर सड़क निर्माण के लिए 18 करोड़ की राशि का ख़र्च अनुमोदित किया गया था। लेकिन यहाँ एक किलोमीटर सड़क बनाने में लगभग 250 करोड़ रुपये ख़र्च किये गये हैं! इसमें अनुमानित राशि से 14 गुना अधिक राशि आवण्टित की गयी है। केवल द्वारका एक्सप्रेस-वे में ही नहीं बल्कि भारत सरकार के सड़क एवं परिवहन निर्माण विभाग के भारतमाला परियोजना के अन्य प्रोजेक्टों में भी काफ़ी गड़बड़ियाँ मौजूद हैं। कैग के अनुसार भारतमाला परियोजना में अनुमोदित राशि से लगभग 58 फ़ीसदी राशि अधिक आवण्टित की गयी। परियोजना को महँगा करने के बावजूद काम तय समय पर नहीं हुआ। मामला केवल वित्तीय गड़बड़ियों का नहीं है बल्कि इसमें और भी कई प्रकार की गड़बड़ियाँ हैं। उन बोली लगाने वालों को भी काम दिया गया है जिसके पास वाजिब दस्तावेज़ तक नहीं थे। यानी फ़र्ज़ी दस्तावेज़ के आधार पर बोली लगाने वालों का चयन करने के मामले भी सामने आये हैं। ज़ाहिरा तौर पर ऐसे बोली लगाने वालों को सही जेबें गरम करने पर ही ठेके मिले होंगे! इसके अलावा, कई भारतमाला परियोजनाएँ निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए पर्यावरण मंज़ूरी के बिना कार्यान्वित की जा रही थीं।

कैग की एक अन्य रिपोर्ट में दक्षिण भारत के कई राज्यों में टोल के नियमों के उल्लंघन का ज़िक्र आता है। टोल नियम का उल्लंघन करके सड़क उपयोगकर्ताओं से अवैध तरीके से 154 करोड़ रुपये की उगाही की गयी है। यानी, सीधे तौर पर जनता को लूटने के लिए टोल का पूरा तन्त्र चलाया जा रहा है।

कैग की रिपोर्ट के अनुसार आयुष्मान भारत-प्रधानमन्त्री जन आरोग्य योजना (पीएमजेएवाई) में कई प्रकार के घोटाले सामने आये हैं। वैसे तो यह योजना ही अपने आप में मेहनतकश जनता विरोधी और निजी पूँजी के पक्ष को पोषित करती है। वास्तव में जहाँ सरकार को बड़े-बड़े सरकारी अस्पताल और सरकार की ओर से बेहतर दवा-इलाज के इन्तज़ाम पर ज़ोर देना चाहिए था, वहाँ इस पूरे काम को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया है कि तमाम धन्नासेठ मेहनतकश जनता के स्वास्थ्य को मुनाफ़ा पीटने का क्षेत्र बना दें। सरकार द्वारा स्तरीय, समान एवं निशुल्क स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने के बजाय लाभार्थियों को 5 लाख रुपये स्वास्थ्य के लिए इंश्योरेंस देने का प्रावधान किया गया है। दरअसल, सरकार इंश्योरेंस देकर प्राइवेट हॉस्पिटल के धन्धा-पानी का जुगाड़ कर रही है। कैग की रिपोर्ट में कई आश्चर्यजनक खुलासे हुए हैं। आयुष्मान भारत योजना के साढ़े सात लाख लाभार्थी का मोबाइल नम्बर एक ही हैं! इस योजना के तहत 3446 ऐसे व्यक्तियों को इलाज के लिए 6.97 करोड़ रुपये भुगतान किया गया, जिनकी मृत्यु डेटाबेस के अनुसार पहले ही हो चुकी थी। ज़ाहिर है, यह पैसा भी भाजपा के नेता-मन्त्रियों व नौकरशाहों की जेबों में गया है। मृत लोगों के नाम पर उगाही कैसे की गयी, इसका कोई स्पष्ट जवाब नहीं दिया गया। आयुष्मान भारत प्रधानमन्त्री जन आरोग्य योजना के तहत देशभर में 2231 अस्पतालों में क़रीब 78,396 ऐसे मामले हैं जिनमें मरीज एक साथ कई चिकित्सा संस्थानों में भर्ती किये गये हैं! राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरण ने इसका जवाब देते हुए कहा कि मुख्य रूप से ये मामले उन परिदृश्यों में सामने आते हैं, जहाँ एक बच्चा एक अस्पताल में पैदा होता है और माँ की पीएमजेएवाई आयीडी का उपयोग करके दूसरे अस्पताल के नवजात देखभाल में स्थानान्तरित हो जाता है। कैग की रिपोर्ट में राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरण के इस दावे को ख़ारिज किया गया है क्योंकि यह एक साथ कई अस्पताल में भर्ती होने वाले केवल शिशु या उसकी माता का मामला नहीं है। 23670 पुरुष मरीज को एक साथ कई चिकित्सा संस्थानों में भर्ती करने के मामले सामने आये हैं। एक साथ कई चिकित्सा संस्थानों में भर्ती के मामले में गुजरात सबसे पहले आता है। गुजरात में सबसे अधिक 21,514 मामले दर्ज किये गये, उसके बाद छत्तीसगढ़ (9,640) और केरल (9,632 मामले) का स्थान है।

कैग की रिपोर्ट में अयोध्या डेवलपमेण्ट प्रोजेक्ट धाँधली की बात भी सामने आयी है। धर्म के नाम पर ज़मीन आसमान एक करने वाली भाजपा-आरएसएस ख़ुद को सबसे बड़ा धर्मध्वजाधारी के रूप में पेश करती है। धर्म के नाम पर दंगा फ़साद भड़काकर लोगों की हत्या तक करवाने वाली यह पार्टी केवल लोगों की धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ कर अपनी राजनीतिक गोटियाँ लाल करती है। अयोध्या डेवलपमेण्ट प्रोजेक्ट के घोटाले ने एक बार फिर से साबित किया है कि भाजपा-आरएसएस का पूरा गिरोह असल में पूँजी का चाकर है। इस प्रोजेक्ट में ठेकेदारों को अनुचित तरीके से 19.73 करोड़ रुपये का लाभ दिया गया है। प्रोजेक्ट में कुछ ऐसे काम के लिए भी भुगतान हुए हैं जो काम वास्तविकता में ज़मीन पर हुआ ही नहीं है। ज्यादा आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि "राष्ट्रवादी" भाजपा ने ही एक समय कारगिल में मारे गये सैनिकों की ताबूत की ख़रीद में भी घोटाला किया था। धर्म और राष्ट्रवाद का इस्तेमाल भाजपा केवल जनता को मूर्ख बनाने के लिए करती है। असल में हर जगह धर्म और राष्ट्रवाद के फर्जीवाड़े का इस्तेमाल भी भाजपा के नेता-मन्त्री नोट छापने और सम्पत्ति बनाने के लिए करते हैं।

कैग की रिपोर्ट में भारत सरकार के ग्रामीण विकास मन्त्रालय में भी घोटाले का मामला सामने आया है। ग्रामीण विकास मन्त्रालय की एक योजना नेशनल सोशल असिस्टेंस प्रोग्राम है, जिसके तहत वृद्धावस्था पेंशन भी है, उसके फण्ड से पैसा निकाल कर विज्ञापन पर ख़र्च कर दिया गया।

एक के बाद एक ऐसे घोटालों के सामने आने के बाद भी मोदी राज में बेलगाम होते भ्रष्टाचार पर गोदी मीडिया चूँ तक नहीं कर रहा है। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी आज भी ख़ुद को पाक-साफ़ और देशभक्त बताने में जी जान से जुटे हैं। कैग की रिपोर्ट इनकी कथनी और करनी के दोमुँहेपन को लोगों के सामने लाता है।

ये तो वे घोटाले हैं जो लोगों के सामने आ गये, कई सारे मामले तो खुल भी नहीं पाते हैं। मामला सामने आने के बाद भी वही रुतबा है, लोगों को भ्रमित करने के लिए, गोदी मीडिया मोदी सरकार की छवि सुधारने का असफ़ल प्रयास कर रहा है। खाये-पिये, अघाये-मुटियाये मध्य वर्ग के लोग आज भी सरकार का गुणगान करते हुए इन चीज़ों से अपना मुँह फेर लेते हैं! उनकी नज़र में आज भी सरकार ईमानदार है! स्पष्ट है कि खाते-पीते उच्च मध्यवर्ग का वर्ग चरित्र ही ऐसा है कि वह लाख घपले-घोटाले सामने आने के बाद भी मोदी सरकार के ही गुणगान करेगा। गोदी मीडिया जो कर रहा है, वह अपेक्षित है। लेकिन व्यापक जनता में भी अब मौजूदा सरकार की सच्चाई खुलकर सामने आ रही है और लोग समझ रहे हैं कि साम्प्रदायिकता का खेल खेलकर फ़ासीवादी मोदी सरकार देश के धन्नासेठों की सेवा कर रही है और इसके नेता-मन्त्री अपनी जेबें भर रहे हैं।

मोदी सरकार के अमृतकाल में दलितों का बर्बर उत्पीड़न चरम पर

(पेज 3 से आगे)

मानसिकता से ग्रस्त है, वो फोड़े से पीप की तरह आये दिन फूट-फूटकर बहता रहता है।

वस्तुतः आज़ादी के बाद भारत में जो पूँजीवादी व्यवस्था अस्तित्व में आयी, उसने मानवद्रोही जाति-व्यवस्था को अपने हितों के हिसाब से कुछ ज़रूरी बदलाव के साथ अपना लिया। वर्तमान समय में जाति-व्यवस्था शासक वर्ग के हाथ में चुनावी हथकण्डे के रूप में और जनता की वर्गीय एकता को तोड़ने का बहुत महत्वपूर्ण उपकरण है। दलितों का बहुत बड़ा हिस्सा मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में खेतों-कारखानों में हड्डियाँ गला रहा है और एक हिस्सा साफ़-सफ़ाई जैसे परम्परागत कामों में लगा हुआ है। आर्थिक रूप से सबसे निचले स्तर पर खड़ी यही दलित आबादी सामाजिक तौर पर भी सबसे अधिक अपमान और उत्पीड़न झेल रही है। दूसरी तरफ सवर्णों का एक बड़ा हिस्सा मौजूदा व्यवस्था में मालिकों, नेताओं, नौकरशाहों, अफ़सरों, ठेकेदारों और कुलकों-फ़ार्मरों के रूप शोषक-शासक वर्ग में बैठा है। भारतीय संविधान और कानून व्यवस्था द्वारा दलित उत्पीड़न को रोकने के जो थोड़े-बहुत उपचार हैं भी वो शासन-सत्ता में बैठे इन लोगों की ब्राह्मणवादी/सवर्णवादी मानसिकता के चलते अमल में नहीं आ पाते।

मनुस्मृति जैसे प्रतिक्रियावादी ब्राह्मणवादी ग्रन्थों का गुणगान करने वाली संघ और भाजपा ब्राह्मणवादी/सवर्णवादी मानसिकता से न केवल ग्रस्त है और बल्कि उसे खाद-पानी दे रही है? और फिर जब इस मानसिकता के लोग शासन-सत्ता में बैठे हों तो दलितों के साथ बढ़ते उत्पीड़न को समझना बहुत ही आसान है। बात-बात पर लोगों के घरों पर बुलडोज़र चढ़ाने वाली उत्तर प्रदेश की योगी सरकार ने कुलदीप सिंह सेंगर जैसे अपराधियों को बचाने के लिए पूरा ज़ोर लगा दिया (बाद में हाई कोर्ट से उसकी ज़मानत भी हो गयी), हाथरस में क़ानून को ताक़ पर रखकर बलात्कार की शिकार दलित लड़की की लाश बग़ैर पोस्टमार्टम के पुलिस प्रशासन द्वारा जलवा दी गयी। और ऐसे ही अनगिनत उदाहरण हैं। इन उदाहरणों से ब्राह्मणवादी/सवर्णवादी मानसिकता के लोगों में क़ानून का जो थोड़ा बहुत भय था उसका ख़त्म होना लाज़िमी है। यह भी ग़ौरतलब है कि भाजपा के सत्ता में आने के बाद ही एससी/एसटीक़ानून को कमज़ोर करने की कोशिश सुप्रीम कोर्ट द्वारा की गयी थी। यह एक खुला रहस्य है कि भाजपा कई काम कोर्ट की आड़ में करती है। जजों की नियुक्ति, तबादला और जज लोया जैसों की हत्या से सहज ही समझा जा सकता है कि न्यायालयों की स्थिति क्या है? भाजपा के विधायक से लेकर छुटभैये नेताओं के दलित विरोधी आपराधिक कृत्य पर सरकार, प्रशासन, न्यायालय की भूमिका किसी से छिपी नहीं है।

दलित उत्पीड़न के ख़िलाफ़ हमारी लड़ाई किसी मुक़ाम पर तभी पहुँच सकती है जब हम पूँजीवादी व्यवस्था की सड़ांध पर उगी फ़ासीवादी ताक़तों और जाति-व्यवस्था के चरित्र को ध्यान में रखते हुए अपने तात्कालिक और दीर्घकालिक संघर्ष की रणनीति बनाएँ ।दलित उत्पीड़न और मानवद्रोही जाति-व्यवस्था के ख़िलाफ़ संघर्ष मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ से संघर्ष जुड़े बग़ैर उसी तरह आगे नहीं बढ़ सकता, जिस तरह पूँजीवाद विरोधी संघर्ष जाति विरोधी संघर्ष को नज़रअन्दाज़ करके आगे नहीं बढ़ सकता। समाज के सभी उत्पीड़ित हिस्सों की वर्गीय एकता ही सबसे व्यापक और जुझारू रूप से दलित उत्पीड़न पर लगाम लगा सकता है। हमें यह बात भी कत्तई नहीं भूलना है कि पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया में दलित समुदाय के बीच से जो एक छोटा-सा सुविधापरस्त सम्पन्न हिस्सा पैदा हुआ है, जिसकी शासक-शोषक वर्ग में पैठ बनी है वह मेहनतकश दलित आबादी के हक़ों-अधिकारों की लड़ाई नहीं लड़ने वाला है। उसकी अस्मितावादी राजनीति इसी पूँजीवादी व्यवस्था में व्यापक दलित आबादी को भटकाती रहेगी। यह हिस्सा अपने वर्गीय हितों के मद्देनज़र फ़ासीवादी ताक़तों के साथ गँठजोड़ करने तक से बाज़ नहीं आता। पिछले लम्बे समय से चल रही अस्मितावादी राजनीति का फ़ासीवादी ताक़तों के आगे घुटनाटेकू रवैया, उसका हश्र और रामविलासपासवान, उदितराज, रामदास आठवले, मायावती, ओम प्रकाश राजभर जैसों का उदाहरण हमें यही सबक देता है। इस अस्मितावादी राजनीति के पास न तो दलित उत्पीड़न को रोकने का कोई रास्ता है न ही जाति उन्मूलन का कोई वास्तविक प्रोजेक्ट! अन्त में, हमारे समाज में प्रगतिशील मूल्यों और तर्कणा का जो अकाल है उसे सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन की सतत सघन प्रक्रिया में ही ख़त्म किया जा सकता है। प्रगतिशील मूल्यों और तर्कणा का व्यापक प्रचार-प्रसार निःसन्देह ब्राह्मणवादी/सवर्णवादी मानसिकता की जड़ों को खोखला करेगा।

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है?

1. क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(छठी क़िश्त)

● शिवानी

पिछले अंक में अर्थवाद पर केन्द्रित अपनी चर्चा में हमने जाना कि मज़दूर वर्ग तक राजनीतिक ज्ञान ले जाने का अभिप्राय केवल मज़दूरों के बीच ही काम करना नहीं होता है, जैसा कि रूसी अर्थवादियों का मत था बल्कि इसका अर्थ आबादी के अन्य सभी संस्तरों या वर्गों के बीच भी मज़दूर वर्ग की हिरावल पार्टी द्वारा अपनी मौजूदगी बनाना होता है। इसी प्रक्रिया में मज़दूर वर्ग राजनीतिक तौर पर शिक्षित-प्रशिक्षित होता है। हमने यह भी समझने का प्रयास किया कि पार्टी सर्वहारा वर्ग का एक विशिष्ट संगठन होती है और उसका सर्वोच्च विचारधारात्मक व राजनीतिक केन्द्र या हेडक्वार्टर होती है। ज़ाहिरा तौर पर, एक मज़दूर भी जब हिरावल की भूमिका में होता है तो वह एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता या बौद्धिक के तौर पर कम्युनिस्ट चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, न कि मज़दूर वर्ग के सामान्य हिस्से के तौर पर स्वतःस्फूर्त मज़दूर चेतना का। इस बिन्दु को हमने पहले भी रेखांकित किया है क्योंकि बहुतेरे अधकचरे "मार्क्सवादी" इस बात को नहीं समझते हैं और फिर अपनी इसी ग़लत समझदारी के चलते लेनिनवादी हिरावल पार्टी की अवधारणा पर बेवजह "आलोचना" के तीर बरसाने लगते हैं।

बहरहाल, हम अपनी चर्चा को आगे बढ़ाते हैं। **'क्या करें?'** में ही लेनिन बताते हैं कि **मज़दूर वर्ग जनवाद के लिए लड़ने वाला हिरावल वर्ग होता है।** यह बात सच है कि लेनिन जिस दौर में **'क्या करें?'** लिख रहे थे, उस दौर में रूस जनवादी क्रान्ति की मंज़िल में था लेकिन यह बात आम तौर पर भी लागू होती है कि मज़दूर वर्ग आम जनवादी अधिकारों और माँगों के लिए किसी भी संघर्ष में अग्रणी भूमिका अदा करता है और उसे ऐसा करना ही चाहिए। यदि मज़दूर वर्ग ऐसा कर पाने में अक्षम साबित होता है, तो इस संघर्ष का नेतृत्व सहज बुर्जुआ ताक़तों के पास आयेगा। सामाजिक जनवाद (कम्युनिस्टों) के आम जनवादी कार्यभारों का उल्लेख करते हुए लेनिन कहते हैं कि मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना बढ़ाने का काम केवल आर्थिक संघर्षों के ज़रिये हो ही नहीं सकता है क्योंकि आर्थिक संघर्ष का दायरा, उसका फ्रेमवर्क बेहद संकुचित होता है। हमने पिछले अंक में चर्चा की थी कि मज़दूरों में वर्ग राजनीतिक चेतना सीधे-सरल तरीके से आर्थिक संघर्षों के *भीतर से* विकसित नहीं होती है बल्कि *बाहर से* ही लायी जा सकती है। यानी सामाजिक जनवादी राजनीतिक चेतना तक पहुँचने के लिए आवश्यक है कि मज़दूर वर्ग सिर्फ़ उन्हीं संकीर्ण आर्थिक हितों और माँगों के लिए ही नहीं लड़ता है जो सीधे तौर पर उसे प्रभावित करती हैं बल्कि वह अत्याचार और उत्पीड़न की प्रत्येक अभिव्यक्ति पर, वह चाहे कहीं भी घटित हुई हो और उसका चाहे किसी भी वर्ग से रिश्ता हो, सर्वहारावर्गीय नज़रिये से अवस्थिति अपनाता है और हस्तक्षेप करता है। इसकी चर्चा हमने विस्तारपूर्वक पिछले अंक में की थी।

स्पष्ट है कि इस जनवादी अधिकार के तहत पूँजीपति वर्ग के किसी भी हिस्से की "लूट व शोषण की स्वतन्त्रता का अधिकार" शामिल नहीं है। लेकिन इसके विपरीत हमारे यहाँ पिछले वर्षों में चले धनी किसान आन्दोलन के दौरान नरोदवादियों, पंजाब के कौमवादी-भाषाई अस्मितावादी "मार्क्सवादियों", पटना के दोन किहोते यानी पीआरसी सीपीआयी (एमएल) के महासचिव अजय सिन्हा जैसों का मत था कि एमएसपी के रूप में बेशी मुनाफ़े का अधिकार धनी किसान-कुलक वर्ग को मिलना ही चाहिए, मानो कि यह इस शोषणकारी-दमनकारी वर्ग का जनवादी अधिकार हो और ये "हस्तियाँ" मज़दूर वर्ग का इस बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना बनने के लिए तरह-तरह की बौद्धिक कलाबाज़ियाँ अंजाम देकर आह्वान भी कर रही थीं!

खेतिहर पूँजीपति वर्ग की न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी के रूप में बेशी मुनाफ़े की माँग उनकी कोई जनवादी माँग नहीं है बल्कि सीधे तौर पर यह पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से की ऐसी आर्थिक माँग है जोकि मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी (जिसमें कि गाँव के छोटे किसान भी शामिल हैं) के तात्कालिक व दूरगामी हितों के ख़िलाफ़ जाती है क्योंकि एमएसपी खाद्यान्न की क़ीमतों को बढ़ाने का काम करता है। यह खेतिहर पूँजीपति वर्ग द्वारा विनियोजित अधिशेष में अपनी हिस्सेदारी को बढ़ाने की मज़दूर-मेहनतकश विरोधी माँग है। **इसलिए मज़दूर वर्ग द्वारा आम तौर पर जनवाद की हिफ़ाज़त करने का मतलब पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े के अधिकार को सुनिश्चित करना कत्तई नहीं है। ऐसा करना शुद्ध वर्ग सहयोगवाद और निकृष्टतम श्रेणी का अवसरवाद है।** उपरोक्त लेनिनवादी शिक्षा का, यानी कि मज़दूर वर्ग के जनवाद के लिए लड़ने वाले हिरावल वर्ग के तौर पर लेनिन की प्रस्थापना का, अवसरवादी हस्तगतिकरण करने वाले लोग दरअसल सर्वहारा कार्यदिशा की जगह वर्ग सहयोगवादी बुर्जुआ कार्यदिशा लागू करते हैं और इस प्रकार मज़दूर वर्ग को अपने शत्रु वर्ग से हाथ मिलाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। साथ ही, **वर्ग सहयोग की यह नीति किसी भी रूप में "अर्थवाद" का खण्डन या निषेध नहीं है** और न ही यह मज़दूर वर्ग द्वारा "राजनीतिक तौर पर सोचने" का पर्याय है। यह सच है कि एक राजनीतिक वर्ग और हिरावल वर्ग के रूप में मज़दूर वर्ग हर मौक़े पर अपनी तात्कालिक विशिष्ट आर्थिक माँगों को ही तरजीह नहीं देता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि मज़दूर वर्ग उन माँगों का भी समर्थन करे जो उसके दूरगामी हितों के ख़िलाफ़ जाती हो। **यह "राजनीतिक" होना नहीं है बल्कि पूँजीपति वर्ग का पिछलग्गू बनना है और अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति को गिरवी रखना है।** वर्ग सहयोगवाद की इस कार्यदिशा को सही साबित करने के लिए ऐसे "सुधिजन" कुलक आन्दोलन के दौरान मज़दूर वर्ग को "राजनीतिक तौर पर सोचने" की नसीहत दे रहे थे। साथ ही साथ, यह कोई रणकौशल (टैकिटस) का प्रश्न मात्र भी नहीं है। वैसे भी हर रणकौशल सर्वहारा वर्ग के आम राजनीतिक दूरगामी हितों के मातहत होता है और ठीक इसलिए इन हितों के विपरीत नहीं जा सकता है।

यह स्पष्टीकरण यहाँ देना आवश्यक था क्योंकि लेनिन की उक्त बात का विकृतीकरण करते हुए मज़दूर आन्दोलन के भीतर कई लोग मिलते हैं जो बेहद अवसरवादी तरीक़े से मज़दूर वर्ग को "राजनीतिक" बनने का पाठ पढ़ाते हैं। **ऐसे लोग दरअसल आन्दोलन के आम मसलों पर घोर अर्थवादी होते हैं लेकिन पूँजीपति वर्ग से सहयोग करने की कार्यदिशा देने के मामले में अचानक "राजनीति" बघारने लगते है!**

बहरहाल, **'क्या करें?'** लेनिन मार्तिनोव जैसे अर्थवादियों की आलोचना प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि वे लोग दरअसल सामाजिक जनवाद/कम्युनिस्ट राजनीति को ट्रेड यूनियनवाद के स्तर तक ले आते हैं और मज़दूर वर्ग समेत आबादी के अन्य वर्गों के बीच राजनीतिक कार्य की अनदेखी करते हैं। **लेनिन के अनुसार मज़दूर वर्ग के साथ-साथ अन्य सभी वर्गों की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति की सभी विशिष्टताओं का अध्ययन करना सामाजिक जनवादी कार्य का बुनियादी अंग है।** अर्थात जनता के सभी संस्तरों के बीच **प्रचार** और **उद्वेलन** का काम बेहद ज़रूरी है जिसमें कि व्यापक अर्थों में **राजनीतिक भण्डाफोड़** सर्वोपरि है। लेनिन बताते हैं कि अर्थवादी शब्दों में इन बातों को मानते हैं लेकिन व्यवहार में ठीक इसका उल्टा करते हैं। लेनिन समझाते हैं कि सर्वहारा वर्ग द्वारा ख़ुद को सभी क्रान्तिकारी शक्तियों का "अगुवा दस्ता" या "अग्रदल" कह देने से वह ऐसा बन नहीं जायेगा, हमें इस तरह काम करना होगा जिससे कि अन्य सभी दस्ते हमें इस रूप में देखें और यह मानने के लिए मजबूर हों कि हम सबके आगे-आगे चल रहे हैं। लेनिन जोड़ते हैं कि दूसरे "दस्तों" के प्रतिनिधि इतने मूर्ख नहीं हैं कि वे केवल हमारे यह कहने से ही मान लेंगे कि हम "अग्रदल" या हिरावल हैं। और यदि सर्वहारा वर्ग यह कार्यभार पूरा करने में असफल रहता है, तो आन्दोलन का नेतृत्व पूँजीवादी/बुर्जुआ ताक़तों के हाथ में आना लाज़मी है। ज़ाहिरा तौर पर अर्थवादी कार्यदिशा इसी नतीजे तक पहुँचा सकती है। जैसा कि हमने पहले भी इंगित किया था अर्थवाद और ट्रेड यूनियनवाद कुछ और नहीं मज़दूर वर्ग और मज़दूर आन्दोलन के भीतर बुर्जुआ राजनीति है। रूसी अर्थवादियों का तो वैसे भी यही मानना था कि राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यानी जनवादी क्रान्ति के कार्यभारों को पूरा करने के लिए उदार बुर्जुआ शक्तियों पर ही निर्भर करना चाहिए।

राजनीतिक भण्डाफोड़ के लिए आवश्यक एक अखिल-रूसी अखबार का विचार, जो लेनिन सबसे पहले **'कहाँ से शुरुआत करें?'** में व्यक्त करते हैं, (और जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं) **'क्या करें?'** में पुनःरेखांकित करते हैं। लेनिन ज़ोर देकर कहते हैं कि देशव्यापी भण्डाफोड़ का मंच एक अखिल-रूसी अखबार ही हो सकता है और यह भी कि **एक राजनीतिक मुखपत्र के बिना राजनीतिक आन्दोलन अकल्पनीय है।** लेनिन लिखते हैं,

"जिस प्रकार आर्थिक भण्डाफोड़ कारखानों के मालिकों के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा करता है, उसी प्रकार राजनीतिक भण्डाफोड़ सरकार के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा करता है... अतएव स्वयं राजनीतिक भण्डाफोड़ उस व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने का एक शक्तिशाली साधन है, जिसका हम विरोध करते हैं, वे दुश्मन से उसके आकस्मिक अथवा अस्थायी सहयोगियों को अलग करने का साधन है, वे निरंकुश सत्ता (रूस में उस वक़्त निरंकुश ज़ारशाही का शासन था- लेखिका) के स्थायी साझेदारों के बीच दुश्मनी और अविश्वास फैलाने का साधन है। ***हमारे ज़माने में सिर्फ़ वही पार्टी क्रान्तिकारी शक्तियों का हिरावल दस्ता बन सकती है, जो सचमुच देशव्यापी पैमाने पर भण्डाफोड़ों को संगठित करेगी।****...बाहरी लोगों (ग़ैर-मज़दूरवर्गीय आबादी) की नज़रों में ऐसी राजनीतिक ताक़त बनने के लिए हमें ख़ुद अपनी चेतना, पहल और उत्साह को बढ़ाने का काम बहुत लगन और धैर्य से करना होगा। इस काम को पूरा करने के लिए पिछलग्गूवाद के सिद्धान्त और व्यवहार पर "हिरावल" का ठप्पा लगा देने से काम नहीं चलेगा।"*

पाठक देख सकते हैं कि लेनिन की आलोचना के निशाने पर यहाँ अर्थवादी हैं जिनकी कथनी और करनी में मीलों का फ़ासला है। कथनी में अर्थवादी "मज़दूर वर्ग से घनिष्ठ सम्बन्ध" स्थापित करने के लिए कई ख़ालिस अर्थवादी नुस्खे तो सुझाते हैं लेकिन करनी में पिछलग्गूवाद और स्वतःस्फूर्ततावाद पर अमल करते हैं। हालाँकि अपनी इस वास्तविक "राजनीति" को छिपाने के लिए वे बीच-बीच में "हिरावल" आदि शब्दों का प्रयोग ज़रूर करते हैं लेकिन इससे अर्थवादी राजनीति की अन्तर्वस्तु बदल नहीं जाती है।

लेनिन आगे बताते हैं कि जब कम्युनिस्ट देशव्यापी भण्डाफोड़ को संगठित करने का काम अपने हाथों में लेते हैं तो इसका मतलब यही यह है कि यह सर्वांगीण राजनीतिक उद्वेलन एक ऐसी पार्टी ही कर सकती है- जो सरकार के विरुद्ध समस्त जनता के नाम पर हमला बोलने का काम, **सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने** के साथ-साथ उसे **क्रान्तिकारी प्रशिक्षण** देने का काम और मज़दूर वर्ग के आर्थिक संघर्ष का नेतृत्व करने व अपने शोषकों के साथ मज़दूर वर्ग के स्वतःस्फूर्त टकरावों का इस्तेमाल करने का काम- जो ये सभी काम अभिन्न रूप से एक साथ मिलाकर करती हो। इसके साथ ही ऐसी पार्टी मार्क्सवाद के हर क़िस्म के विकृतिकरण के विरुद्ध विचारधारात्मक मोर्चा भी खोलती है। **लेकिन अर्थवाद की चारित्रिक विशेषताओं में से एक यह है कि वह इन कार्यभारों के आपसी सम्बन्धों को समझने में नाकाम है।** बतौर हिरावल, कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में संगठित सर्वहारा वर्ग सामाजिक व राजनीतिक जीवन के हर मसले पर हस्तक्षेप करता है और सर्वहारा वर्गीय दृष्टिकोण से अपनी अवस्थिति तय करता है। जनवादी मसलों पर हस्तक्षेप करने का मतलब वर्गीय राजनीति छोड़ना नहीं होता है, लेकिन कहने की आवश्यकता नहीं कि यह हस्तक्षेप पूँजीपति वर्ग के नज़रिये से नहीं, कम्युनिस्ट नज़रिये से होना चाहिए, सर्वहारा वर्ग की स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति बरक़रार रखकर होना चाहिए।

मज़दूर आन्दोलन में व्याप्त अर्थवादी प्रवृत्ति का केवल राजनीतिक कार्यभारों के प्रति ही संकुचित दृष्टिकोण प्रकट नहीं होता है बल्कि सांगठनिक कार्यभारों के प्रति भी यह दृष्टिकोण दिखलाई पड़ता है। लेनिन **'क्या करें?'** में लिखते हैं कि "मालिकों तथा सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष" के लिए ज़ाहिरा तौर पर किसी देशव्यापी केन्द्रीयकृत संगठन की आवश्यकता नहीं है, जो राजनीतिक असन्तोष, विरोध और गुस्से की हर प्रकार की अभिव्यक्ति को एक लड़ी में पिरोकर उन्हें एक संयुक्त आक्रमण का रूप दे सके, जो पेशेवर क्रान्तिकारियों का संगठन हो और जिसका नेतृत्व समस्त जनता के सच्चे राजनीतिक नेता करते हों। हमने पहले भी ज़िक्र किया था कि किसी भी संगठन का चरित्र इससे तय होता है कि उसकी गतिविधियों का दायरा और सारतत्व क्या है। आर्थिक संघर्षों को निर्दिष्ट करने के लिए ट्रेड यूनियन के जन संगठन पर्याप्त है। लेकिन मज़दूर वर्ग की सभी गतिविधियाँ ट्रेड यूनियन गतिविधियों तक सीमित

(पेज 17 पर जारी)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला - 14

अध्याय - 13

बेशी मूल्य का उत्पादन

● अभिनव

बेशी मूल्य ही समूचे पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े, लगान व ब्याज़ का स्रोत होता है। बेशी मूल्य के उत्पादन को समझने के लिए हमें पूँजीपति द्वारा निवेशित पूँजी के संघटन को समझना होगा। इस पूँजी को हम दो हिस्सों में बाँट सकते हैं: **परिवर्तनशील पूँजी (variable capital)** और **स्थिर पूँजी (constant capital)**। यह कोई मनमाने तरीके से किया गया बँटवारा नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक तौर पर किया गया बँटवारा है। इसे समझे बग़ैर हम बेशी मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया, बेशी मूल्य की दर व शोषण की दर को उपयुक्त रूप में नहीं समझ सकते हैं।

परिवर्तनशील पूँजी और स्थिर पूँजी

हमने पिछले अध्याय में पढ़ा था कि उत्पादन के साधनों का मूल्य श्रम द्वारा संरक्षित किया जाता है और उसे माल के मूल्य में ज्यों का त्यों स्थानान्तरित कर दिया जाता है। हम जानते हैं कि हर उत्पादन का साधन एक विशिष्ट प्रकार का उत्पादन का साधन होता है। किसी भी उत्पादन के साधन का उत्पादक उपभोग, यानी उत्पादन की प्रक्रिया में उसका ख़र्च, एक ख़ास प्रकार के ठोस श्रम द्वारा ही हो सकता है। मसलन, उत्पादन की प्रक्रिया में आरी का उत्पादक ख़र्च उस प्रकार नहीं हो सकता है, जिस प्रकार फावड़े का होता है। दोनों का उत्पादक उपभोग अलग-अलग प्रकार के ठोस मूर्त श्रम द्वारा ही सम्भव है। कहने का तात्पर्य है कि इन दोनों उत्पादन के साधनों का इस्तेमाल अलग-अलग तरह से अलग-अलग प्रकार के ठोस उत्पादक श्रम के ज़रिये ही हो सकता है। **इसलिए उत्पादन के साधनों के मूल्य को संरक्षित करना और उन्हें ज्यों का त्यों माल के मूल्य में स्थानान्तरित करना मूर्त श्रम (concrete labour) का काम होता है। यह श्रमशक्ति का पहली नैसर्गिक ख़ूबी होती है।** यानी, अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों का उत्पादक उपभोग करना और उनके मूल्य को संरक्षित कर माल के मूल्य में स्थानान्तरित करना वह प्रकार्य है जो कि श्रमशक्ति एक निश्चित प्रकार का मूर्त श्रम देकर पूरा करती है।

श्रमशक्ति की दूसरी नैसर्गिक ख़ूबी होती है अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य पैदा करना। यह अमूर्त श्रम का प्रकार्य होता है क्योंकि मूल्य का सारतत्व साधारण अमूर्त श्रम होता है। हम पहले के अध्यायों में समझ चुके हैं कि जब हम भिन्न मालों का विनिमय करते हैं, तो हम उनमें लगे मूर्त श्रम और विशिष्ट उपयोग मूल्य पर ध्यान नहीं देते हैं, उसे नज़रन्दाज़ करते हैं और उसमें लगे अमूर्त श्रम पर ग़ौर करते हैं, यानी आम तौर पर मनुष्य के मस्तिष्क, नसों, मांसपेशियों द्वारा किया गया कार्य। इस अमूर्त श्रम को सामाजिक रूप से आवश्यक श्रमकाल में मापा जाता है, जो किसी भी उत्पादन शाखा में उत्पादन की औसत स्थितियों से निर्धारित होता है। श्रमशक्ति अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में उससे ज़्यादा अमूर्त श्रम देती है, जितना कि स्वयं उन मालों के उत्पादन में लगता है जिनका उपभोग मज़दूर श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए करता है। **यानी श्रमशक्ति अपने उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया में उससे ज़्यादा अमूर्त श्रम देती है जितना अमूर्त श्रम स्वयं श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन में लगता है। यानी श्रमशक्ति अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य अपने उत्पादक उपभोग में पैदा करती है।** पहले वह मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करती है और उसके बाद वह उससे ऊपर बेशी मूल्य पैदा करती है। **यानी उसके द्वारा पैदा किये गये नये मूल्य के दो हिस्से होते हैं: मज़दूरी और बेशी मूल्य।** यही श्रमशक्ति की दूसरी नैसर्गिक ख़ूबी है और यह पूँजीपति के लिए सबसे ज़्यादा अहम होती है।

चूँकि उत्पादन के साधनों का मूल्य उत्पादन की प्रक्रिया में नहीं बढ़ता और न ही वे अपने से कोई नया मूल्य पैदा करते हैं, इसलिए पूँजी का वह हिस्सा जो पूँजीपति उत्पादन के साधनों को ख़रीदने पर लगाता है, **स्थिर पूँजी (constant capital)** कहलाता है। उत्पादन के साधनों का मूल्य एक बार में उत्पादित माल में स्थानान्तरित हो सकता है, या फिर टुकड़े-टुकड़े में। मसलन, कच्चे माल भौतिक तौर पर भी माल में तब्दील हो जाते हैं और उनका पूरा मूल्य भी एक बार में माल में स्थानान्तरित हो जाता है। जबकि कोई मशीन या इमारत अपना मूल्य धीरे-धीरे टुकड़े-टुकड़े में माल में स्थानान्तरित करती है, जबकि भौतिक तौर पर वह माल में कभी रूपान्तरित नहीं होती, उत्पादन की प्रक्रिया में बस उसकी घिसाई होती जाती है। मिसाल के तौर पर, यदि किसी मशीन की औसत उम्र एक साल है, यानी वह हर रोज़ 8 घण्टे काम करने पर एक साल तक चलती है, तो इसका अर्थ है कि हर दिन उस मशीन के मूल्य का 1/365वाँ हिस्सा माल में स्थानान्तरित होता है। साल पूरा होने पर वह उत्पादन में लगने योग्य नहीं रह जाती, उसकी 'मृत्यु' हो जाती है, उसका पूरा मूल्य उत्पादित माल में स्थानान्तरित हो चुका होता है और जो बचता है वह मार्क्स के शब्दों में 'मशीन का शव' होता है। इस प्रकार पूरे साल में उस मशीन का पूरा मूल्य माल में स्थानान्तरित हो जाता है। निश्चित तौर पर, जिन उत्पादन के साधनों का मूल्य अंश-अंश में स्थानान्तरित होता है, वे भी एक उपयोग-मूल्य के तौर पर पूर्ण रूप में उत्पादन में भागीदारी करते हैं। यानी, उनके मूल्य के अंश-अंश में स्थानान्तरित होने का अर्थ यह नहीं है कि एक ठोस उपयोग-मूल्य, यानी एक मशीन के तौर पर भी वे उत्पादन में अंश-अंश में हिस्सा लेते हैं। उत्पादन में वे अपने पूरे भौतिक अस्तित्व के साथ भागीदारी करती हैं।

साथ ही, अगर किसी मशीन की उम्र पूरी होने से पहले उस मशीन का उत्पादन करने वाले उद्योग में उत्पादकता बढ़ने के कारण लागत कम हो जाती है और मशीन का मूल्य तथा क़ीमत गिर जाती है, तो पहले से उत्पादन में इस्तेमाल की जा रही इस विशिष्ट मशीन का मूल्य भी गिर जायेगा। मिसाल के तौर पर, अगर किसी बर्तन बनाने वाले पूँजीपति ने एक प्रेस मशीन 1 लाख रुपये में 2022 में ख़रीदी और इस मशीन की उम्र औसतन एक वर्ष है, तो ये 1 लाख रुपये एक वर्ष में माल के मूल्य में अंश-अंश में स्थानान्तरित होते रहेंगे; यानी, हर दिन 1 लाख रुपये का 1/365वाँ हिस्सा, यानी लगभग रु. 274, माल में स्थानान्तरित होगा। लेकिन अगर इसी बीच इस मशीन की बाज़ार क़ीमत गिरकर 75 हज़ार रुपये हो जाती है, तो बचे हुए समय में मशीन का मूल्य इस घटे हुए सामाजिक मूल्य के अनुसार ही स्थानान्तरित होगा। वजह यह कि हर नयी पूँजी इस मशीन को नयी क़ीमत पर ख़रीदेगी और वह माल में इस नये सामाजिक मूल्य को ही साल भर में टुकड़े-टुकड़े में स्थानान्तरित करेगी और बाज़ार की सामान्य औसत स्थितियों द्वारा तय नया सामाजिक मूल्य की माल में स्थानान्तरित होगा। पूँजीपति वर्ग की आपसी प्रतिस्पर्द्धा इस बात को सुनिश्चित करती है। यही वजह है कि पूँजीपति जल्द से जल्द अपने उत्पादन के साधनों को उत्पादन की प्रक्रिया में खपाकर उनका मूल्य माल में स्थानान्तरित कर देना चाहते हैं। हमें हमेशा यह बात ध्यान में रखनी होगी कि मूल्य एक सामाजिक निर्धारण है।

इतना स्पष्ट है कि उत्पादन के साधन कोई नया मूल्य नहीं पैदा करते और ज़्यादा से ज़्यादा अपने मूल्य को ही एक बार में या अंशों में माल के मूल्य में स्थानान्तरित करते हैं। यह प्रकार्य श्रम द्वारा ही पूरा किया जाता है। यही वजह है कि उत्पादन के साधनों पर पूँजीपति की पूँजी का जो हिस्सा ख़र्च होता है, उसे स्थिर पूँजी कहा जाता है।

श्रमशक्ति को ख़रीदने के लिए पूँजी का जो हिस्सा ख़र्च होता है, यानी वह हिस्सा जो मज़दूरों को मज़दूरी देने में ख़र्च होता है, उसे परिवर्तनशील पूँजी (variable **capital) कहते हैं क्योंकि मज़दूर पहले अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है और फिर उसके ऊपर अतिरिक्त मूल्य या बेशी मूल्य पैदा करता है।** यानी, पूँजी का यह हिस्सा निवेशित होने पर बढ़ता है क्योंकि इससे एक ऐसा माल ख़रीदा जाता है, जो कि अपने उत्पादक उपभोग, यानी उत्पादन के दौरान ख़र्च होने की प्रक्रिया में स्वयं अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य पैदा करता है।

यहाँ यह ध्यान रखना ज़रूरी है पूँजीपति मज़दूर को मज़दूरी उधार नहीं देता बल्कि वास्तव में मज़दूर पूँजीपति को अपना श्रम उधार देता है, जिसका भुगतान बाद में होता है, यानी तब, जब मज़दूर ने अपनी मज़दूरी से ज़्यादा मूल्य पैदा कर दिया है। इसलिए उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान पूँजीपति मज़दूर का कर्ज़दार होता है, न कि मज़दूर पूँजीपति का। यह परिवर्तनशील पूँजी, यानी मज़दूरी पर ख़र्च होने वाला पूँजी का अंश ही है जो बेशी मूल्य को पैदा करता है क्योंकि इसका भौतिक तत्व है श्रमशक्ति, एक ऐसा ख़ास माल जो अपने उत्पादन में लगने वाले श्रम से ज़्यादा श्रम दे सकता है और यही अतिरिक्त श्रम बेशी मूल्य और मुनाफ़े का आधार होता है।

बेशी मूल्य की दर

परिवर्तनशील पूँजी ही बेशी मूल्य को पैदा करती है क्योंकि श्रम ही मूल्य और बेशी मूल्य को पैदा करता है। इसे आप एक साधारण उदाहरण से समझ सकते हैं। उत्पादन की ऐसी कई शाखाएँ हैं जिनमें पूँजीपति कोई भी उत्पादन के साधन नहीं ख़रीदता है और समूची उत्पादन प्रक्रिया के केवल दो ही तत्व होते हैं: श्रमशक्ति और प्रकृति। मिसाल के तौर पर, कुछ प्रकार की खदानें जिनकी उत्पादन की प्रक्रिया में श्रमशक्ति और प्रकृति के संसाधनों के अलावा और कुछ नहीं लगता। इस स्थिति में हम बेशी मूल्य को तभी समझ सकते हैं, यानी पूँजीपति के मुनाफ़े की तभी व्याख्या कर सकते हैं जब हम यह समझें कि बेशी मूल्य श्रमशक्ति द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया में पैदा किया जाता है। श्रमशक्ति पहले मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करती है और फिर उसके ऊपर बेशी मूल्य पैदा करती है। *यानी, जहाँ स्थिर पूँजी 0 होती है वहाँ भी पूँजीपति मुनाफ़ा विनियोजित करता है और ऐसा ठीक इसलिए होता है कि नया मूल्य, यानी मज़दूरी और बेशी मूल्य, केवल और केवल श्रमशक्ति द्वारा, यानी मज़दूर द्वारा पैदा किया जाता है और उत्पादन के साधनों का मूल्य, बस माल के मूल्य में स्थानान्तरित होता है।*

मज़दूर श्रमकाल के जिस हिस्से में अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है उसे **आवश्यक श्रमकाल (necessary labour-time)** कहते हैं, क्योंकि यह श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक होता है और इसके बिना उत्पादन निरन्तर जारी रह ही नहीं सकता है। यह जितना मज़दूर के लिए आवश्यक है, उतना ही पूँजीपति के लिए भी आवश्यक है क्योंकि उसके मुनाफ़े का आधार यही है। इस आवश्यक श्रमकाल के बाद मज़दूर बेशी मूल्य पैदा करता है और कार्यदिवस का वह हिस्सा जिसमें वह बेशी मूल्य पैदा करता है, **अतिरिक्त श्रमकाल (surplus labour-time)** कहलाता है। आवश्यक श्रमकाल में किया गया **आवश्यक श्रम (necessary labour) आवश्यक उत्पाद (necessary product)** में मूर्त रूप ग्रहण करता है, जबकि अतिरिक्त श्रमकाल में किया गया **अतिरिक्त श्रम (surplus labour) अतिरिक्त उत्पाद (surplus product)** में मूर्त रूप ग्रहण करता है।

अलग-अलग शोषणकारी वर्ग समाजों के बीच इसी आधार पर अन्तर किया जाता है कि प्रत्यक्ष उत्पादक वर्ग के अतिरिक्त श्रम को शासक-शोषक वर्ग किस प्रकार हड़पते हैं। दास व्यवस्था में दास स्वयं दास स्वामी की सम्पत्ति होता था और वह जैसे चाहे उसके अतिरिक्त श्रम को हड़प सकता था। सामन्ती व्यवस्था में प्रत्यक्ष उत्पादक निश्चित दिनों के दौरान अपने प्लाट पर खेती करता था और बाकी दिनों सामन्ती भूस्वामी के खेत पर बिना किसी मेहनताने के खेती करता था। इन व्यवस्थाओं में अतिरिक्त श्रम को हड़पने की प्रक्रिया व्यवस्थित तौर पर आर्थिकेतर ज़ोर-जबर्दस्ती पर निर्भर करती थी, जिसके आधार में राज्य की हिंसा और धार्मिक विचारधारा का वर्चस्व खड़ा था। लेकिन पूँजीवादी उत्पादन पद्धति की ख़ासियत यह होती है कि इसमें अतिरिक्त उत्पाद को पूँजीपति वर्ग ज़ोर-ज़बर्दस्ती के बूते नहीं हड़पता है। प्रत्यक्ष उत्पादक उत्पादक के साधनों से वंचित किये जा चुके होते हैं, लेकिन वे दासत्व व भूदासत्व से भी मुक्त हो चुके होते हैं। नतीजतन, वे "दोहरे तौर पर आज़ाद" हो चुके होते हैं: यानी वे उत्पादन के साधनों के मालिकाने से "आजाद" हो चुके होते हैं और वे अपनी श्रमशक्ति किसी को भी बेचने के लिए "आज़ाद" हो चुके होते हैं! अब पूँजीपति उनकी श्रमशक्ति को ख़रीदता है और उसे पूरे दिन के लिए इस्तेमाल करने का अधिकारी होता है। श्रमशक्ति एक कार्यदिवस में अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य पैदा करती है, यानी मज़दूर एक दिन में अपने गुज़ारे के लिए आवश्यक दिहाड़ी से ज़्यादा मूल्य पैदा करके पूँजीपति को देता है। लेकिन

(पेज 16 पर जारी)

बेशी मूल्य का उत्पादन

(पेज 15 से आगे)

चूँकि अब आवश्यक श्रमकाल और अतिरिक्त श्रमकाल एक ही सजातीय, एकाश्मी कार्यदिवस का अंग होते हैं और समय और स्थान में अलग-अलग नहीं होते, इसलिए अब औपचारिक तौर पर ऐसा लगता है कि कहीं कोई शोषण नहीं है! मज़दूर मेहनत करता है और उसका मेहनताना उसे मिल जाता है! लेकिन फिर पूँजीपति का मुनाफ़ा कहाँ से आता है? यह सच्चाई अब छिप जाती है कि मज़दूर का अतिरिक्त श्रम ही पूँजीपति को अतिरिक्त उत्पाद देता है जिसे बेचकर वह मुनाफ़ा हासिल करता है। यह सच्चाई अब वैज्ञानिक विश्लेषण से ही सामने आती है। इसे ही मार्क्स ने पूँजीवादी शोषण का घृणित क्षुद्र रहस्य कहा और इसी वजह से पूँजीवादी समाज का एक **फेटिश चरित्र** होता है, यानी ऐसा चरित्र जो कि सच्चाई को छिपाता है, उस पर पर्दा डालता है और हमें उस सच्चाई को समझने से रोकता है।

बहरहाल, आगे बढ़ते हैं। श्रम के शोषण की दर (degree of exploitation of labour) अतिरिक्त श्रम और आवश्यक श्रम का अनुपात है। यानी,

श्रम के शोषण की दर = अतिरिक्त श्रम/आवश्यक श्रम

Degree of exploitation = surplus labour/necessary labour, or, SL/NL

इसी अनुपात को श्रमकाल के रूप में भी रखा जा सकता है, यानी,

श्रम के शोषण की दर = अतिरिक्त श्रमकाल/आवश्यक श्रमकाल

surplus labour-time / necessary labour-time = SLT/NLT

याद रहे कि श्रम के शोषण की दर श्रम के शोषण की निरपेक्ष मात्रा को नहीं दिखलाती है। मसलन, अगर एक मज़दूर 5 घण्टे में अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य सृजित कर देता है और बाकी 5 घण्टे वह पूँजीपति के लिए बेशी मूल्य पैदा करता है, तो शोषण की दर 100 प्रतिशत (5 घण्टे/5 घण्टे) हुई। मान लें कि बाद में वह 6 घण्टे में अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है और 6 घण्टे पूँजीपति के लिए बेशी मूल्य पैदा करता है, तो भी शोषण की दर हुई 100 प्रतिशत लेकिन निरपेक्ष अर्थों में शोषण की मात्रा 5 घण्टे अतिरिक्त श्रम से बढ़कर 6 घण्टे अतिरिक्त श्रम हो गयी।

जब हम शोषण की दर को स्वतन्त्र मूल्य-रूप यानी मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त करते हैं तो उसे ही हम **बेशी मूल्य की दर (rate of surplus value)** कहते हैं। यानी, जब पूँजीपति आवश्यक श्रमकाल में पैदा उत्पाद व अतिरिक्त श्रमकाल में पैदा उत्पाद, यानी कि आवश्यक उत्पाद व अतिरिक्त उत्पाद को बेचकर मज़दूरी के बराबर मूल्य और बेशी मूल्य को मुद्रा के रूप में वापस प्राप्त कर लेता है, तो अतिरिक्त श्रम व आवश्यक श्रम उसके पास मुद्रा पूँजी के रूप में मौजूद होता है। शोषण की दर जीवित श्रम के रूप में अभिव्यक्त होती है, जबकि बेशी मूल्य की दर वस्तुकृत (objectified - उत्पाद का रूप ग्रहण कर चुके) हो चुके और वास्तवीकृत (realized - बिक चुके) हो चुके श्रम, यानी मृत श्रम के रूप में अभिव्यक्त होती है।

बेशी मूल्य की दर = बेशी मूल्य/परिवर्तनशील पूँजी

S = s/v

(v = परिवर्तनशील पूँजी जो मज़दूरी पर ख़र्च होती है; s = बेशी मूल्य)

श्रम के शोषण की दर उसी सच्चाई को जीवित श्रम की मात्राओं के अनुपात में पेश करती है, जिसे बेशी मूल्य की दर मूल्य-रूप में, या मृत श्रम की मात्राओं के रूप में पेश करती है। पूँजीपति वर्ग अपनी वर्ग दृष्टि और अपने वर्ग हितों के कारण बेशी मूल्य की दर को नहीं समझता। वह बेशी मूल्य और मज़दूरी पर ख़र्च परिवर्तनशील पूँजी के अनुपात को नहीं देखता, बल्कि मुनाफ़े और कुल पूँजी के अनुपात को देखता है। उसके लिए उसका मुनाफ़ा अपनी पूरी पूँजी से ही पैदा हो रहा है, न कि श्रमशक्ति के द्वारा। लेकिन हम ऊपर दिये गये उदाहरण में देख चुके हैं कि यह बात कि मुनाफ़ा केवल श्रमशक्ति से ही पैदा होता है, उन खनन उद्योगों के उदाहरण से एकदम साफ़ हो जाती है जहाँ उत्पादन के साधनों पर निवेश शून्य होता है और उत्पादन में केवल प्राकृतिक संसाधन व श्रमशक्ति का ही इस्तेमाल होता है। वजह यह कि मूल्य और कुछ नहीं होता बल्कि वस्तुकृत श्रम ही होता है। इसलिए बेशी मूल्य की दर की गणना की पद्धति मार्क्स के शब्दों में यह होती है:

"इसलिए बेशी मूल्य की दर का आकलन करने की पद्धति संक्षेप में इस प्रकार है। हम उत्पाद के कुल मूल्य को लेते हैं और स्थिर पूँजी को जो कि उत्पाद के मूल्य में केवल दोबारा प्रकट हो रही है, को शून्य कर देते हैं। जो बचता है वह मात्र वह मूल्य होता है जो कि माल के उत्पादन की प्रक्रिया में सृजित हुआ है। अगर बेशी मूल्य की मात्रा दी गयी हो, तो हमें केवल उसे केवल इस शेष राशि से घटाने की आवश्यकता होगी, जिससे कि हमें परिवर्तनशील पूँजी की मात्रा का पता चल जाता है। और इसके विपरीत अगर परिवर्तनशील पूँजी की मात्रा दी गयी हो, तो इसकी उल्टी क्रिया द्वारा हम बेशी मूल्य का पता लगा सकते हैं। अगर दोनों ही दिये हुए हों, तो हमें केवल अन्तिम गणना करनी होगी, यानी s/v की गणना करना, यानी बेशी मूल्य और परिवर्तनशील पूँजी के अनुपात की गणना।" (कार्ल मार्क्स, 1982, कैपिटल, वॉल्यूम 1, पेंगुइन पब्लिशर्स, लन्दन, पृ. 327)

इसके बाद मार्क्स कई ठोस उदाहरणों के साथ बेशी मूल्य का आकलन करके दिखलाते हैं, जिनको पाठक सन्दर्भित कर सकता है। **सबसे अहम बात यह है कि चूँकि अतिरिक्त मूल्य या बेशी मूल्य परिवर्तनशील पूँजी का प्रकार्य है, उसी से पैदा होता है इसलिए उसकी दर की गणना परिवर्तनशील पूँजी के सापेक्ष ही की जा सकती है, न कि कुल पूँजी के सापेक्ष।** याद रखें, यहाँ हम बेशी मूल्य की बात कर रहे हैं, *मुनाफ़े* की नहीं। बेशी मूल्य की मात्रा और मुनाफ़े की मात्रा समान होती है लेकिन बेशी मूल्य परिभाषा से ही परिवर्तनशील पूँजी के सापेक्ष निर्धारित श्रेणी है जबकि मुनाफ़ा (profit) कुल पूँजी के सापेक्ष निर्धारित श्रेणी है। आम तौर पर, इन शब्दों को अदल-बदलकर इस्तेमाल किया जाता है। ऐसे में, जहाँ हमारा अर्थ बेशी मूल्य के परिमाण और मुनाफ़े के परिमाण से है, तो कुछ जगहों पर हमारा काम चल सकता है, लेकिन जहाँ कहीं भी बेशी मूल्य के मुनाफ़े, लगान व ब्याज़ में विभाजन की बात हो रही हो या जहाँ बेशी मूल्य व मुनाफ़े के परिमाणों की नहीं बल्कि उनकी दरों की बात हो रही हो, वहाँ हम इन दोनों शब्दों को अदल-बदलकर नहीं इस्तेमाल कर सकते हैं। इस पर हम आगे के अध्यायों में बात करेंगे। अभी इतना समझ लेना काफ़ी है कि बेशी मूल्य की दर का आकलन हमेशा परिवर्तनशील पूँजी के सापेक्ष ही होती है।

इस प्रकार हम पूँजीवादी उत्पादन के फलस्वरूप पैदा होने वाले माल को *मूल्य के रूप में* विभाजित करके भी पेश कर सकते हैं, *उत्पाद के रूप में* विभाजित करके भी पेश कर सकते हैं और *श्रमकाल के रूप में* विभाजित करके भी पेश कर सकते हैं। माल के मूल्य को इस रूप में पेश किया जा सकता है:

माल का मूल्य = स्थिर पूँजी + परिवर्तनशील पूँजी + बेशी मूल्य = c + v + s

या,

कुल उत्पाद = अतीत के श्रम से पैदा उत्पादन के साधन + जीवित श्रम से पैदा आवश्यक उत्पाद + जीवित श्रम से पैदा बेशी उत्पाद

या,

कुल श्रमकाल = उत्पादन के साधनों के उत्पादन में अतीत में लगा कुल श्रमकाल + आवश्यक श्रमकाल + अतिरिक्त श्रमकाल

इन तीनों रूपों में ही कुल उत्पाद को अभिव्यक्त किया जा सकता है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि पूँजीपति हमेशा बेशी मूल्य की दर और उसकी मात्रा दोनों को ही बढ़ाने की कोशिश करता है। बेशी मूल्य को बढ़ाने के लिए पूँजीपति वर्ग दो तरीकों का इस्तेमाल करता है। पहला तरीका है **निरपेक्ष बेशी मूल्य (absolute surplus value)**, जिसका इस्तेमाल पूँजीपति पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास के शुरुआती दौर में ज़्यादा किया करते थे, हालाँकि आज भी जब भी मौका मिले वे इस तरीके का इस्तेमाल करते हैं। दूसरा तरीका होता है **सापेक्षिक बेशी मूल्य (relative surplus value)**। इस तरीके का इस्तेमाल पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के उन्नत होने के साथ आम प्रवृत्ति बनता जाता है। इन दोनों पर ही अलग से चर्चा करना पूँजीपति वर्ग द्वारा मज़दूर वर्ग के शोषण को समझने के लिए अनिवार्य है।

निरपेक्ष बेशी मूल्य

हमने ऊपर देखा कि कुल श्रमकाल यानी पूरे कार्यदिवस को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है: आवश्यक श्रमकाल और अतिरिक्त श्रमकाल। आवश्यक श्रमकाल, यानी वह समय जब मज़दूर अपनी मज़दूरी यानी, फिलहाल हम यह मान सकते हैं कि, अपनी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य पैदा करता है। आवश्यक श्रमकाल इस बात पर निर्भर करता है कि मज़दूर की श्रमशक्ति का मूल्य क्या है? मज़दूर की श्रमशक्ति का मूल्य उन उत्पादों के मूल्य से निर्धारित होता है, जिनका उपभोग मज़दूर व उसका परिवार अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करते हैं। इन उत्पादों को **मज़दूरी-उत्पाद (wage-goods)** कहा जाता है। नतीजतन, श्रमशक्ति का मूल्य उन उद्योगों में श्रम की उत्पादकता पर निर्भर करता है, जो मज़दूरी-उत्पाद पैदा करते हैं या फिर उन उद्योगों में श्रम की उत्पादकता पर निर्भर करता है जो कि मज़दूरी-उत्पाद पैदा करने वाले उद्योगों को उत्पादन के साधनों की आपूर्ति करते हैं।

मान लें कि ऐसे उद्योगों में श्रम की उत्पादकता स्थिर है। ऐसे में श्रमशक्ति का मूल्य भी लगभग स्थिर रहेगा। नतीजतन, आवश्यक श्रमकाल भी समान ही रहेगा। **यदि आवश्यक श्रमकाल में कोई परिवर्तन नहीं आता है, तो फिर बेशी मूल्य को बढ़ाने का एक ही तरीका रह जाता है: कुल श्रमकाल को बढ़ाना।** जब पूँजीपति काम के घण्टों को बढ़ाकर यानी कुल श्रमकाल में वृद्धि करके बेशी मूल्य को बढ़ाते हैं तो इसे **निरपेक्ष बेशी मूल्य** कहा जाता है क्योंकि यह समूचे कार्यदिवस की लम्बाई में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी पर आधारित होता है।

कार्यदिवस की लम्बाई निर्धारणीय होती है लेकिन निर्धारित नहीं होती। यानी उसे तय किया जा सकता है, लेकिन वह पहले से तय नहीं होती है। कार्यदिवस की लम्बाई पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के बीच के संघर्ष पर निर्भर करती है। पूँजीपति उसे अधिकतम सम्भव लम्बा रखने की कोशिश करते हैं, जबकि मज़दूर उसे कम करने के लिए संघर्ष करते हैं। पूँजीपति कार्यदिवस को अधिक लम्बा बनाने की लगातार कोशिश करते हैं, क्योंकि मुनाफ़े की उनकी हवस की कोई हद नहीं होती है। पूँजीवादी उत्पादन पद्धति से पहले के शोषणकारी वर्ग समाजों में शासक वर्ग जैसे कि सामन्तों, राजाओं, दास स्वामियों आदि की लालच की एक सीमा थी: उनके ऐशो-आराम और ऐय्याशी की चाहत और माँग। लेकिन पूँजीपति के लिए ऐसी कोई सीमा नहीं होती है। उसका नारा ही यह होता है: पैसे से अधिक पैसा बनाना। अधिक पैसा बनाने का और कोई लक्ष्य नहीं होता, सिवाय उससे भी अधिक पैसा बनाने के! *इसलिए पूँजीपति का अतिरिक्त श्रम को हड़पने का लालच असीम होता है, क्योंकि यही अतिरिक्त श्रम बेशी मूल्य और इसलिए मुनाफ़े का स्रोत है।* इसलिए पूँजीपति हर सूरत में बेशी श्रम की मात्रा को बढ़ाना चाहता है, बेशी श्रमकाल को बढ़ाना चाहता है। जब तक आवश्यक श्रमकाल को कम नहीं किया जा सकता, तब तक पूँजीपति श्रमकाल को निरपेक्ष रूप से बढ़ाने के तरीके से ही अतिरिक्त श्रमकाल को बढ़ाने का प्रयास करता है। वहीं मज़दूर वर्ग इस प्रयास को नाकाम करने के लिए संघर्ष करता है और एक मानवीय जीवन के अधिकार के लिए अपने काम के घण्टों को कम करने की लड़ाई लड़ता है।

कार्यदिवस की सीमा दो कारकों पर निर्भर करती है: कार्यदिवस की लम्बाई को इतना नहीं बढ़ाया जा सकता कि मज़दूर वर्ग अपनी श्रमशक्ति का न्यूनतम आवश्यक स्वस्थ स्थिति में पुनरुत्पादन ही न कर सके। औद्योगिक क्रान्ति के दौर में इंग्लैण्ड में जब पूँजीपति वर्ग ने मुनाफ़े की अपनी अन्धी हवस में कार्यदिवस को 14, 16 और कई जगहों पर 18 घण्टे तक बढ़ा दिया, मज़दूरों की जीवन प्रत्याशा घटकर 21-22 वर्षों पर आ गयी, बच्चों व स्त्रियों के श्रम के भयंकर शोषण के फलस्वरूप बाल मृत्यु दर, अरक्तता और रोगों का घटाटोप मज़दूर वर्ग में छा गया और मज़दूर वर्ग के लिए अपनी श्रमशक्ति का स्वस्थ स्थिति में पुनरुत्पादन ही सम्भव नहीं रह गया तो पूँजीपति वर्ग की राज्यसत्ता ने कार्यदिवस की लम्बाई पर कुछ कानूनी सीमाएँ लागू करना शुरू किया। *पूँजीवादी राज्यसत्ता पूँजीपति वर्ग के दूरगामी आम राजनीतिक हितों को ध्यान में रख कर काम करती है; वह अलग-अलग पूँजीपतियों के समान तात्कालिक व्यक्तिगत आर्थिक हितों को प्राथमिकता नहीं देती, बल्कि पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक शासन को क़ायम रखने को अपना लक्ष्य बनाती है। नतीजतन, वह कई बार व्यक्तिगत पूँजीवादी हितों को नज़रन्दाज़ कर सकती है, व्यक्तिगत पूँजीपतियों की माँगों को अस्वीकार कर सकती है और कई बार पूँजीवादी व्यवस्था के औपचारिक नियमों के उल्लंघन पर किसी या किन्हीं पूँजीपतियों को दण्डित भी कर सकती है। पूँजीवादी राज्यसत्ता की यह सापेक्षिक स्वायत्तता ही उसके वर्ग चरित्र को आम लोगों के सामने धूमिल करने का काम करती है और लोगों में यह भ्रम पैदा करती है कि वह निष्पक्ष है। लेकिन थोड़ा क़रीबी से निगाह डालते ही साफ़ हो जाता है कि ऐसा करते*

(पेज 17 पर जारी)

बेशी मूल्य का उत्पादन

(पेज 16 से आगे)

समय भी पूँजीवादी राज्यसत्ता पूँजीपति वर्ग के दूरगामी आम राजनीतिक हितों की ही सेवा करती है। बहरहाल, काम के घण्टों पर एक कानूनी सीमा रखने के पीछे भी पूँजीवादी राज्यसत्ता का यही प्रकार्य मौजूद था। यदि मज़दूर वर्ग अपनी श्रमशक्ति का पुनरुत्पादन ही स्वस्थ स्थिति में नहीं कर पायेगा, यदि उसका विद्रोह श्रम और पूँजी के बीच एक सतत् युद्ध जैसी स्थिति पैदा करेगा और मज़दूर वर्ग के रैडिकल चरित्र को उभारेगा तो फिर पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग के शासन के लिए न तो यह आर्थिक तौर पर अच्छी बात होगी और न ही राजनीतिक तौर पर। इसलिए पहला कारक जिस पर कार्यदिवस की लम्बाई निर्भर करती है वह है पूँजीवादी राज्यसत्ता द्वारा पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग को दीर्घायु बनाने के लिए ही कार्यदिवस की लम्बाई पर एक कानूनी सीमा आरोपित करना जो कि मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच जारी संघर्ष के आधार पर समय-समय पर संशोधित होती है। **दूसरे शब्दों में, श्रमशक्ति का मूल्य आम तौर पर कभी भी विचारणीय अवधि के लिए उस भौतिक सीमा के नीचे नहीं जाता है जिसके नीचे मज़दूर वर्ग अपने श्रमशक्ति का न्यूनतम काम योग्य स्थिति में पुनरुत्पादन नहीं कर सकता।**

दूसरा कारक जिस पर कार्यदिवस की लम्बाई निर्भर करती है वह है मज़दूर वर्ग द्वारा आराम और मनोरंजन के लिए ख़ाली वक़्त के लिए लड़ाई। यानी मज़दूर वर्ग द्वारा पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध वर्ग संघर्ष। यह मज़दूर वर्ग के अन्दर राजनीतिक चेतना के विकास और समाज के सांस्कृतिक व सभ्यता-सम्बन्धी विकास पर निर्भर करता है कि मज़दूर वर्ग अपने इस अधिकार के लिए किस तरह और कब लड़ता है। निश्चित तौर पर, ये दोनों कारक स्वयं ऐतिहासिक वर्ग संघर्ष पर निर्भर करते हैं। मज़दूर वर्ग जिस हद तक अपने आपको एक राजनीतिक वर्ग के रूप में, यानी सर्वहारा वर्ग के रूप में तब्दील कर पाता है, वह जिस हद तक अपने वर्ग के साझा हितों के प्रति सचेत हो पाता है, वह जिस हद तक समूचे पूँजीपति वर्ग को अपने शत्रु के तौर पर पहचान पाता है और वह किस हद तक पूँजीवादी राज्यसत्ता को समूचे पूँजीपति वर्ग के नुमाइन्दे के तौर पर देख पाता है, इसी से तय होता है कि वह कार्यदिवस की लम्बाई को कम करने की माँग को कैसे सूत्रबद्ध कर पाता है और किस तरह से उसके लिए लड़ पाता है। मार्क्स स्पष्ट तौर पर बताते हैं कि किसी भी समाज में संस्कृति और सभ्यता के स्तर और उसमें मज़दूर वर्ग की राजनीतिक वर्ग चेतना के स्तर के आधार पर ही मज़दूर वर्ग अपने वर्ग संघर्ष को संगठित करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसी प्रक्रिया में उसकी वर्ग चेतना भी उत्तरोत्तर उन्नत होती है।

इन दो कारकों के आधार पर कार्यदिवस की लम्बाई दो सीमाओं के बीच बदलती रह सकती है: पहला, कार्यदिवस इतना छोटा नहीं हो सकता कि वह आवश्यक श्रमकाल से कम या उसके बराबर हो जाये; ऐसे में पूँजीपति का मुनाफ़ा ख़त्म हो जायेगा और वह निवेश ही नहीं करेगा। दूसरा, कार्यदिवस की लम्बाई इतनी ज़्यादा नहीं हो सकती है कि मज़दूर वर्ग अपनी श्रमशक्ति का न्यूनतम स्वस्थ स्थिति में पुनरुत्पादन ही न कर पाये। इन सीमाओं के बीच कार्यदिवस की लम्बाई वर्ग संघर्ष की स्थिति के अनुसार घटती-बढ़ती रह सकती है। मज़दूरी पर भी यही नियम लागू होता है। **मज़दूरी इतनी कम नहीं हो सकती है कि मज़दूर अपनी श्रमशक्ति का पुनरुत्पादन न कर सके और न ही वह इतनी ज़्यादा हो सकती है कि मुनाफ़े और पूँजी संचय को असम्भव बना दे। इन दो सीमाओं के भीतर मज़दूरी कम या ज़्यादा हो सकती है और इन सीमाओं के भीतर उनमें होने वाला उतार-चढ़ाव वर्ग संघर्ष पर निर्भर करता है।** इस प्रकार मार्क्स ने क्लासिकीय बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र में प्रचलित **'मज़दूरी के लौह नियम' (iron law of wages)** का खण्डन किया (जिसे माल्थस, रिकार्डो, आदि जैसे क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्री और बाद में फर्दिनान्द लासाल जैसे लोग मानते थे) और बताया कि उपरोक्त दो सीमाओं के भीतर मज़दूर वर्ग के वर्ग संघर्ष के अनुसार मज़दूरी ऊपर या नीचे होती रहती है। आम तौर पर, वह औसतन श्रमशक्ति के मूल्य के इर्द-गिर्द ही मण्डराती रहती है।

लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि स्वयं श्रमशक्ति का मूल्य ऐतिहासिक तौर पर दो कारकों से निर्धारित होता है: पहला, भौतिक व जैविक कारक, यानी काम करने योग्य स्थिति में श्रमशक्ति का जैविक पुनरुत्पादन और दूसरा, किसी भी देश में मज़दूर वर्ग का सांस्कृतिक व सभ्यता-सम्बन्धी विकास स्तर, यानी अपनी राजनीतिक व सांस्कृतिक चेतना के स्तर के अनुसार वह एक मानवीय जीवन की बुनियादी शर्तों में किन चीज़ों को शामिल करता है। पूँजीपति वर्ग हमेशा विचारधारात्मक व राजनीतिक तौर पर मज़दूर वर्ग की राजनीतिक व सांस्कृतिक चेतना को कुन्द कर उसे भौतिक जीवन के न्यूनतम पुनरुत्पादन के स्तर पर लाना चाहता है, ताकि वह जीवित रहने और काम कर पूँजीपति के लिए मुनाफ़ा पैदा करते जाने को ही जीवन मान ले। मज़दूर वर्ग का हिरावल दस्ता मज़दूर वर्ग के भीतर इस पूँजीवादी विचारधारा के विरुद्ध संघर्ष करता है, शोषण की सच्चाई को उजागर करता है और एक गरिमामय मानवीय जीवन की गतिमान बुनियादी शर्तों को स्पष्ट करता है। मार्क्स के लेखन में हर जगह हमें चीज़ों को द्वन्द्व में देखने यानी चीज़ों को उनकी गति में देखने, उनकी सम्पूर्णता में देखने और उनके अन्तर्सम्बन्धों में देखने की शिक्षा में मिलती है। इसे ही हम द्वन्द्वात्मक पद्धति कहते हैं और यही वैज्ञानिक पद्धति होती है। देखें, मार्क्स इस विषय में क्या लिखते हैं:

"जैसा कि हर माल के साथ होता है, श्रमशक्ति का मूल्य भी इस विशिष्ट माल के उत्पादन, और इसलिए उसके पुनरुत्पादन, के लिए ज़रूरी श्रमकाल से होता है। जहाँ तक इस माल का एक मूल्य है, यह उसमें वस्तुकृत औसत सामाजिक श्रम की एक निश्चित मात्रा से अधिक और किसी भी चीज़ का प्रतिनिधित्व नहीं करता। श्रमशक्ति एक जीवित व्यक्ति की क्षमता के रूप में ही अस्तित्वमान होती है। इसलिए इसके उत्पादन का अर्थ है उस व्यक्ति के अस्तित्व का क़ायम रहना। व्यक्ति के अस्तित्व के क़ायम रहने की शर्त को मानें, तो श्रमशक्ति के उत्पादन का अर्थ है उस व्यक्ति का या उसकी अजीविका का पुनरुत्पादन। अपनी आजीविका के लिए उसे गुज़ारा करने के निश्चित साधनों की निश्चित मात्रा की आवश्यकता होती है। इसलिए श्रमशक्ति के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रमकाल वही श्रमकाल है जो उसके आजीविका के साधनों के उत्पादन के लिए आवश्यक है; दूसरे शब्दों में श्रमशक्ति का मूल्य उसके स्वामी के जीवन के लिए ज़रूरी आजीविका के साधनों का ही मूल्य है...दूसरी ओर, उसकी तथाकथित अनिवार्य आवश्यकताओं की संख्या और सीमा, और साथ ही जिस तरीके से ये आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, स्वयं इतिहास का उत्पाद होते हैं और इसलिए किसी देश द्वारा अर्जित सभ्यता के स्तर पर भी काफ़ी हद तक निर्भर करते हैं; विशेष तौर पर, वे उन स्थितियों पर निर्भर करते हैं जिनमें, और नतीजतन उन आदतों और अपेक्षाओं पर भी निर्भर करते हैं, जिनके साथ, स्वतन्त्र मज़दूरों का यह वर्ग बना है। इसलिए अन्य मालों के मामलों के विपरीत, श्रमशक्ति के मूल्य के निर्धारण में एक ऐतिहासिक और नैतिक तत्व भी होता है। फिर भी, किसी दिये गये दौर में किसी दिये गये देश में, मज़दूर की आजीविका के लिए ज़रूरी साधनों की औसत मात्रा एक ज्ञात तथ्य होती है।" (वही, पृ. 274-75)

बेशी मूल्य की दर और मात्रा

बेशी मूल्य की दर और मात्रा के कुछ सामान्य सूत्रों से हम मज़दूरी, मज़दूरों की संख्या, बेशी मूल्य की दर और बेशी मूल्य की मात्रा के बीच के रिश्तों को समझ सकते हैं। मान लें,

मज़दूरी = v, बेशी मूल्य = s; मज़दूरों की संख्या = n; कुल मज़दूरी = V; बेशी मूल्य की दर = s'; बेशी मूल्य की मात्रा = S

तो स्पष्ट है कि,

कुल मज़दूरी (V) = v * n

बेशी मूल्य की दर (s') = s/v

बेशी मूल्य की मात्रा (S) = V * (s/v)

जैसा कि आप देख सकते हैं, यदि हमें मज़दूरों की संख्या और मज़दूरी पता हो, तो बेशी मूल्य की मात्रा बेशी मूल्य की दर पर निर्भर करेगी; अगर हमें बेशी मूल्य की दर और मज़दूरी पता हो, तो बेशी मूल्य की मात्रा मज़दूरों की संख्या पर निर्भर करेगी। *इन सभी मात्राओं में एक साथ इस प्रकार के परिवर्तन भी हो सकते हैं कि आख़िर में बेशी मूल्य की मात्रा पर कोई अन्तर न पड़े क्योंकि सभी परिवर्तन एक दूसरे को प्रतिसन्तुलित कर रहे हों।*

पूँजीपति हमेशा निरपेक्ष बेशी मूल्य बढ़ाकर यानी काम के घण्टों में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी करके, बेशी मूल्य की दर को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। लेकिन हम ऊपर देख चुके हैं कि इसकी एक सीमा होती है। एक सीमा के बाद निरपेक्ष बेशी मूल्य को नहीं बढ़ाया जा सकता है। जब यह सीमा नज़दीक आने लगती है, मज़दूर वर्ग का प्रतिरोध उग्र होता जाता है, तो पूँजीपति वर्ग नयी तकनोलॉजी को लाकर, नवोन्मेषों व मशीनरी का इस्तेमाल करके आम तौर पर श्रम की उत्पादकता को बढ़ाता है और **सापेक्षिक बेशी मूल्य** को बढ़ाता है। ग़ौरतलब है कि ये सारे परिवर्तन स्वयं सामाजिक श्रम का ही उत्पाद होते हैं, यानी नयी तकनोलॉजी, मशीनरी व तमाम नवोन्मेष, आदि। लेकिन चूँकि वे पूँजी के नियंत्रण और स्वामित्व में होते हैं और उसके द्वारा उत्पादन में लाये जाते हैं इसलिए *ऐसा लगता है* कि उत्पादक शक्तियों का यह विकास पूँजी की देन है। यह स्वामित्व के सम्बन्धों के आधार पर पैदा होने वाली विचारधारा है। लेकिन जैसे ही हम थोड़ा बारीकी में देखते हैं वैसे ही पता चलता है कि हरेक नयी तकनोलॉजी, मशीन या नवोन्मेष आम तौर पर आम मेहनतकश जनता के बुनियादी सामाजिक व्यवहार का, सामाजिक श्रम का उत्पाद होते हैं।

(अध्याय 13 अगले अंक में जारी; अगले अंक में 'सापेक्षिक बेशी मूल्य' उपशीर्षक के तहत चर्चा जारी रहेगी)

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा !

(पेज 14 से आगे)

नहीं होती हैं, यदि उसे राजनीतिक तौर पर एक वर्ग बनना है। **अर्थवादी दरअसल सांगठनिक मामलों में भी स्वत:स्फूर्तता के ही पुजारी होते हैं और इसलिए संगठन के स्वत:स्फूर्त ढंग से विकसित होते रूपों को ही वन्छानीय मानते हैं। लेनिन ने इससे सांगठनिक मामलों में अर्थवादियों के नौसिखुएपन की संज्ञा दी।** यह नौसिखुआपन, लेनिन के अनुसार, केवल प्रशिक्षण के अभाव को नहीं दिखलाता है, बल्कि यह नौसिखुआपन आम तौर पर क्रान्तिकारी संगठन की गतिविधियों के दायरे को संकुचित करने के मामले में भी नज़र आता है। इसके साथ ही लेनिन ने स्पष्ट किया कि पिछड़ेपन और स्वत:स्फूर्तता की हिमायत करने वाली और सांगठनिक मामलों में संकुचित और निम्न कोटि की समझदारी रखने वाली हर प्रवृत्ति के विरुद्ध भी डटकर लड़ना बेहद ज़रूरी है, जिसका प्रतिनिधित्व मज़दूर आन्दोलन में अर्थवादी करते हैं। सांगठनिक गतिविधियों के मामले में पैदा हुई यह संकीर्णता तब तक दूर नहीं की जा सकती जब तक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट अर्थवाद को आम तौर पर दूर नहीं करते।

'क्या करें?' में लेनिन मज़दूर वर्ग के संगठन के रूपों के विकसित होने का एक ऐतिहासिक कालक्रम प्रस्तुत करते हैं और बताते हैं कि मज़दूर वर्ग के राजनीतिक तौर पर संगठित होने के शुरुआती दौरों में इसमें अनगढ़पन होना लाज़िमी सी बात थी। लेकिन जैसे-जैसे वर्ग युद्ध और वर्ग संघर्ष गम्भीर और तीव्र होता चला गया, इन सांगठनिक रूपों की सीमाएँ भी ज़ाहिर होती चली गयीं और क्रान्तिकारी पार्टी की ज़रूरत भी स्पष्ट होती चली गयी।

यानी अर्थवाद सांगठनिक मामलों में भी सचेतनता के बरक्स स्वत:स्फूर्तता को ही प्राथमिकता देता है और सांगठनिक रूपों में सचेतन तत्व की अनिवार्यता को नकारता है। इसके अनुसार सर्वहारा को राजनीतिक क्रान्ति के लिए प्रशिक्षित करने वाला मार्क्सवादी दर्शन, विचारधारा और विज्ञान से लैस क्रान्तिकारियों का एक मज़बूत व केन्द्रीयकृत संगठन बनाने की कोई ज़रूरत नहीं है। जबकि क्रान्तिकारी मार्क्सवाद का मानना है कि मज़दूर आन्दोलन का सबसे प्राथमिक तथा आवश्यक व्यावहारिक कार्यभार क्रान्तिकारियों का ऐसा संगठन खड़ा करना है जो "राजनीतिक संघर्ष की शक्ति, उसके स्थायित्व और उसके अविराम क्रम को क़ायम रख सके।" इसके विपरीत कोई भी अन्य समझदारी दरअसल नौसिखुएपन और स्वत:स्फूर्तता का स्तुति-गान है और उसका समर्थन है। इसके आगे की चर्चा अगले अंक में जारी रहेगी।

(अगले अंक में जारी)

कहानी

सुकून की तलाश में एक दिन

● अन्वेषक

पीले पड़ चुके पत्ते हर तरफ़ बिखरे हुए थे। शरद अपने अन्त की ओर बढ़ रहा था। तेज़ ठिठुरन पैदा करने वाली हवाएँ बीच-बीच में रुक कर चल रही थी। उस पर सूरज की चमकदार किरणें राहत दे रही थी। लाउडस्पीकर से फटी हुई आवाज़ में शोर करता हुआ भक्ति गीत इस पूरे माहौल में लगातार खलल डालने का काम कर रहा था। अन्दर मन्दिर के बड़े से पार्क में तीन-चार लोगों के पचासों छोटे-छोटे समूह बिखरे हुए थे, जो अपने में ही मग्न थे। पार्क के बीच में मन्दिर के प्रवेश द्वार से लेकर मुख्य मूर्ति तक टाइल्स को बिछाकर आने जाने के लिये सड़क बनायी गयी थी। सड़क के दूसरी ओर के पार्क का हिस्सा भी इसी तरह के समूहों से भरा हुआ था। इस हिस्से में क़रीब बीस फीट ऊँची गणेश, शंकर, लेटे हुए विष्णु और हाथ में धनुष लिये राम की मूर्ति बनी हुई थी। इन मूर्तियों के आसपास लोगों का आना-जाना लगातार ज़ारी था। मन्दिर के बीच में तीन तरफ़ से दीवार को खड़ाकर कृष्ण की मूर्ति को स्थापित किया गया था। वहाँ पर दस-बीस लोग कतार में लगे थे, प्रसाद चढ़ाने के लिए। इसके अलावा मन्दिर के चारों ओर के किनारे छोटे-छोटे पेड़ों से सजे थे। मन्दिर में प्रवेश का एक द्वार मुख्य सड़क की ओर से था और दूसरा द्वार ठीक सामने बाज़ार की ओर खुलता था, जो कि आज के दिन इन लोगों के लिए लगता था। पढ़ने वाले ज़रूर सोच रहे होंगे कि आख़िर ये कौन लोग हैं? इससे आप समझ जायेंगे। यह मन्दिर चारों तरफ़ से कारख़ानों से घिरा हुआ है और कारख़ानों की यह श्रृंखला एक औद्योगिक इलाक़े में स्थित है और ये लोग मज़दूर, उनके परिवार और बच्चे हैं जो इन कारख़ानों में काम करते हैं। आज इनकी छुट्टी का दिन है, तो यह सब अपने कारख़ानों को छोड़कर, यहाँ सुकून की तलाश में आयें हैं क्योंकि दूर-दूर तक यहाँ सिर्फ़ कारख़ाने ही हैं। यही कारख़ाने है जो दिन की शुरुआत से लेकर रात, बीतते दिन, महीनों, साल और अन्त आते-आते ज़िन्दगी को पूरी तरह सोख़ लेते हैं। इन सबसे जूझते हुए ही सब सुकून की तलाश करते हुए कुछ घण्टे बिताने आते हैं। यहाँ सब अलग-अलग हैं, पर सबकी ज़िन्दगियाँ जुड़ी हुई हैं।

लाउडस्पीकर में घोषणा हुई सभी रामभक्त इस बुधवार को दो बजे मन्दिर निर्माण के लिये निकाली जा रही रैली में ज़रूर शामिल हों और रामलला का आशीर्वाद लें।

"अब बताओ छुट्टी करके इनके रैली में जायें, तो खाने को देंगे यह लोग।" मुंह से बीड़ी निकालकर साइड में रखते हुए काली शर्ट, काला पज़ामा पहने व्यक्ति ने कहा। तीन मज़दूर जो उसके बगल में बैठे थे उन्होंने हामी भरी।

"कल उस चमचे फोरमैन को तो पीट दिया होता मैंने। साला! बहुत उल्टा सीधा बोल रहा था मुझे।" आँखें छोटी गोल और सपाट चेहरा जिस पर हल्की दाढ़ी और मूंछ थी, पतला दुबला शरीर और हल्की दबी आवाज़ में सुनील बोला। सुनील की उम्र 25-26 रही होगी, जवानी का जोश व उत्साह उसके पतले-दुबले शरीर के बावजूद उसमें दिख रहा था।

"मैंने तो उसे पहली बार में ही पहचान लिया था कि वह कितना बड़ा हारामी है।" अपनी बात ज़ारी रखते हुए सुनील बोला।

"भाई फोरमैन को तो लंबुआ चुगली करता है जाकर।" सुनील के बगल में बैठा उसी के उम्र का लड़का बोला। बीड़ी पीते हुए सुनील और बाक़ी लोगों ने सहमति में सिर हिलाया।

"भाई साहब का फोन भी आया था कल। उसे बोल रहे थे अगले इस हफ़्ते अब नाइट भी लगानी होगी 3 दिन।" तीसरा मज़दूर बोला।

"अरे जब से नयी मशीन आयी है, काम बढ़ गया है।" बात जारी रखते हुए आख़िरी नौजवान मज़दूर बोला।

"हाँ यह तो है! पर साला बनिया काम बढ़ा देता है, पर पैसा बढ़ाने की बात करो तो फैक्ट्री के घाटे गिनाने लगता है। अब राजू और चन्दन को ही ले लो उनके पैसे नहीं बढ़ाए और पैसा बढ़ाने के लिये बोलने पर काम से निकाल दिया। वह तो दस साल पुराने थे, हमें तो अभी लगे हुए मुश्किल से दो साल हुए हैं तो हमारा क्या घंटा बढायेगा।" सुनील सोचते हुए बोला।

"चलो अब कर ही क्या सकते हैं, हम चारों के बोलने से क्या होगा! बाक़ी 15 लोग तो चुपचाप काम ही करते रहते हैं।" तीसरा मज़दूर बोला :

"चलो छोड़ो यह सब तो पूरे हफ़्ते लगा ही रहता है, अभी सामान क्या-क्या लेना है बोलो। अब एक घण्टा ही बचा है, फिर गार्ड फैक्ट्री का गेट बन्द कर देगा।"

"हाँ यार! सब्जी लेनी है, बर्तन धोने का साबुन और मुझे शर्ट चाहिए अगले हफ़्ते दिल्ली जाऊँगा लाल किला घूमने।"

"अबे दारू और चखना भी तो लेना है।" बात पूरी करते हुए सुनील बोला।

2

कृष्ण की मूर्ति के पास से धीरे-धीरे भीड़ कम हो रही थी। अब फ़ोटो खिंचवाने वाले लोग वहाँ से जा रहे थे। एक औरत जिसकी छोटी कद काठी थी, सलवार कमीज़ पहने, गोद में एक साल का बच्चा लिये हुए, मूर्ति के पास अपना और बच्चे का सर झुका कर खड़ी थी और सामने की ओर देख रही थी। सामने उसका पति जिसने हाथ में सब्जी के दो थैले और एक जलेबी का पैकेट पकड़ा था, फोन को टेढ़ा करके फ़ोटो ले रहा था। बड़ी मूर्तियों के पास जाकर भी कई लोग सेल्फ़ी ले रहे थे। कोई भौं ऊपर चढ़ा रहा था, कोई होठों को पूरा चौड़ा करके तस्वीर ले रहा था, कुछ बिल्कुल सीरियस होकर। पर सब कोशिश कर रहे थे कि आजकल जिस तरह के सेल्फ़ी पोज़ प्रचलित है, तस्वीर वैसी ही आये।

एक नौजवान जिसके बाल बिल्कुल करीने से कंघी किये हुए थे, चेहरा सफ़ाचट और उसने हरे रंग की टी-शर्ट और काली जीन्स पहनी थी। आँखों के सामने हाथ लाकर उसमें फोन पकड़े बात कर रहा था। फोन के दूसरी ओर उसकी पत्नी ही रही होगी, यह उसके चेहरे पर लगातार क़ायम हल्की-हल्की मुस्कान से लग रहा था।

"देखो बोला था ना तुमको कितना बड़ा मन्दिर है। अब देख रही हो इतनी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हमारे चार गाँव में भी ऐसा नहीं है।"

फिर वह थोड़ा रुका जैसे कुछ सुन रहा हो।

"तुम तो बार-बार एक ही बात का रट लगाती हो। कैसे ले आऊँ तुमको यहाँ? हम कोनो महल में रहता हूँ? फैक्ट्री में रहता हूँ, तुम अच्छी लगोगी यहाँ रहते हुए। सब कहेंगे देखो राहुलवा नयी-नयी बीवी को फैक्ट्री में रखता है। थोड़ा रुक जाओ कमा लेने दो एक-दो साल, फिर पास में कमरा ले लूँगा, तब बुला लूँगा तुमको हमरी जान!"

"अभी कैसे ले लूँ? अभी देखो फैक्ट्री में रहने पर ही फ़ायदा है। 12 घण्टे काम करता हूँ, तब जाकर कहीं दस हज़ार हो पाता है और उसमें से ही भी गाँव भेजने होते हैं, किश्त चुकानी रहती है तो बताओ कैसे लूँ, बाहर कमरा?"

"हाँ! गुस्सा नहीं हो रहा बस तुमको सब बता रहा हूँ। हाँ! आज ही सारी सब्जी ले जाऊँगा और चावल कल तक का है वह परसों ले लूँगा, वहीं फैक्ट्री के सामने से। चलो तुम्हें सारा मन्दिर घुमाते हैं।" राहुल खड़ा हुआ और फोन को सामने करके चलने लगा।

3

हवाएँ ज़्यादा ठंडी और तेज़ हो चली थी और सूरज की चमक उसके आगे फीकी पड़ रही थी। पार्क के एक तरफ़ दस-पन्द्रह लड़के व आदमी इकट्ठा गये और दो हिस्सों में बँटकर सब कबड्डी खेलने लगे। आसपास बैठे लोग भी उनमें दिलचस्पी ले रहे थे। टी-शर्ट, बनियान, पैज़ामा पहने अब सब कबड्डी पर मशगूल थे। चप्पलों को एक साथ जोड़कर बीच में विभाजन रेखा बना दी गयी। आसपास के सब लोगों ने भी अपनी पसंदीदा टीम चुन ली और उनको जिताने के लिए ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे। "पकड़-पकड़, अबे रोक साले को, बस थोड़ा और ये गया" इस तरह की आवाज़ों का मिश्रण आसपास सुनायी देने लगा। खेल में शामिल सभी बीस मिनट में ही पसीने से तरबतर हो गये, पर आसपास के लोगों के उत्साह ने उन्हें खेल जारी रखने और जीतने का हौसला दिया। पर खेल जारी रखने का सिर्फ़ यही कारण नहीं था, असल में देखने वालों में कई लड़कियाँ भी थी। इससे कुछ खिलाड़ी ज़्यादा ही जोश में आ गये ताकि लड़कियों को अपने खेल के हुनर से प्रभावित कर सके। पर धीरे-धीरे खिलाड़ी आउट होते गये और आसपास के लोग भी कम हो गये।

मन्दिर और बाज़ार में मेले जैसा माहौल था। बहुत से लोग नये-नये कपड़ों में दीख रहे थे। कइयों ने नये भड़कीले चमकदार कपड़े पहने थे, जो उसी बाज़ार से सबसे सस्ती वाली दुकान से ख़रीदे गये थे। सफ़ेद शर्ट, चमकीली नीली जैकेट और पेंट जिस पर शेर-चीते के डिज़ाइन थे और बालों को बीच से खड़ा करके, काला चौकोर चश्मा पहने जो उसके पतले चेहरे पर बड़ा लग रहा था। बीस साल का दीखने वाला पतला दुबला सा लड़का कृष्ण के मूर्ति के आस पास घूम रहा था, लड़कियों के पास से गुज़रने पर अपने बालों पर हाथ फेरता और फ़ोन को आगे पर अपनी तस्वीर खींचने लगता और उसके बाद बगल से गुज़र रही लड़की को हल्का चश्मा नीचे करके देखने लगता।

वहीं पास में एक लड़का-लड़की भी मन्दिर तक जाने वाली सड़क पर टहल रहे थे। दोनों ने एक भूरे रंग की जीन्स पहनी थी, जिसमें बस थोड़ा सा ही रंग का अन्तर था, साथ ही गुलाबी टीशर्ट पहनी थी। साथ चलते-चलते दोनों के हाथ सट जाते तो शर्माते हुए एक-दूसरे की आँखों में देखने लगते।

"कल काम ख़त्म होने के बाद तू कहाँ चली गयी थी? मैं तेरा वेट कर रहा था।"

"चुप कर! मैंने तो वहीं से रिक्शा पकड़ी थी जहाँ से रोज पकड़ती हूँ। बस कल हुआ यह कि वह कमीना ठेकेदार पीछे ही पड़ गया था, कह रहा था ओवरटाइम लगा कर जाना है। मैंने तो बोल दिया तबीयत ठीक नहीं है आज नहीं रुक पाऊँगी। तभी जल्दी-जल्दी रिक्शा पकड़ कर भाग गयी।"

"मेरे को बता देना अगर ज़्यादा फ़ालतू बोले तो, साले की हड्डी पसली तुड़वा दूंगा।" अपना रौब जमाते हुए लड़का बोला।

"और तूने क्या सोचा फिर?"

"किस बारे में?"

"बताया तो था तुझे छह महीने बाद गाँव जाना है। पापा ने किसी लड़के को देखा है मेरे लिये।"

दोनों का का चेहरा निराशा से लटक गया। लड़के के सूखे गाल और अन्दर धँस गये। जेब में हाथ डालकर चलते हुए वह बोला :

"अभी तो 6 महीने हैं करता हूँ कुछ। नहीं होगा तो भागकर शादी कर लेंगे, वैसे भी फैक्ट्री में ही कमाकर खा रहे हैं, तो इधर से कहीं दूर मुम्बई या कहीं भी जाकर भी काम कर ही लेंगे। कौन सा वहाँ तक हमें कोई ढूँढ लेगा।"

दोनों टहलते टहलते बाज़ार की ओर चले गये।

4

बाज़ार में प्रवेश करते ही भीड़ बढ़ गयी। सारी आवाज़ें मिलकर शोर और चिढ़ पैदा कर रही थी। मन्दिर से निकलते ही प्रसाद की दुकानें थी और उसके सामने टैटू बनायें जा रहे थे। वहाँ कई नवयुवक व युवतियाँ टैटू बनवाने के लिए खड़े थे। कोई अपना, अपनी प्रेमिका या माँ-बाप का नाम गुदवा रहा था, तो कोई चाँद-सितारे या कंकाल जैसा डिज़ाइन बनवा रहा था। उसके पास जलेबी-समोसे, चाट पकौड़ी, छोले भटूरे की दुकानें थी, जहाँ बच्चे सबसे ज़्यादा इकट्ठा थे। जो एक दूसरे को हल्का-हल्का ठेलकर अपनी पसंदीदा चीज़ लेने की कोशिश में लगे थे। इससे आगे कपड़ों की दुकानें थी जहाँ साड़ी से लेकर पज़ामे तक सब मिल रहे थे। कुछ दुकानों में कपड़े सज़ाकर रखे गये थे, ताकि दूर से ही दिखाई दे। कई लोग आकर्षित होकर आते और उनमें से ज़्यादातर दाम सुनने के बाद निराश होकर लौटते जाते। फिर बारी आती उन दुकानों की जहाँ सबसे अधिक भीड़ थी। बेतरतीब, एक-दूसरे पर फेंककर रखे हुए कपड़े जो सबसे कम क़ीमत पर बिक रहे थे। इन दुकानों पर आलू-प्याज़ की तरह पड़े कपड़ों को उठाते देखते और मोलभाव करने की कोशिश करते। कुछ दुकानों पर 'सौ रुपये सेल-सौ रुपये सेल' का रिकॉर्ड बार-बार बज रहा था तो अधिक लोग वहीं जाते। ये थे फीके, बेकार गुणवत्ता, हल्के कटे-फटे या पुराने पड़े कपड़े, उन्ही में से छाँटकर लोग अपनी पसन्द के कपड़े ले रहे थे। सबसे आख़िर में सब्जियों की दुकानें थी जहाँ सबका बराबर आना-जाना लगा था।

मन्दिर के सबसे दूर कोने में कुछ दो-चार लोगों के झुण्ड बैठे थे। वहीं काली पेंट सफ़ेद शर्ट उस पर काला कोट और टाई पहने एक अधेड़ उम्र का आदमी अपने काले चमड़े के बैग से कुछ काग़ाज़ निकालकर वहाँ बैठे लोगों को दिखा रहा था। उसके गोल भरे चेहरे का मांस लटककर गले के ऊपरी भाग को ढक रहा था और उसने काला गोल चश्मा पहना हुआ था।

"कब तक ऐसे फैक्ट्रियों में काम करके सात-आठ हज़ार कमाते रहोगे। आप भी सोचते होंगे कि अच्छी ज़िन्दगी हो, अच्छे कपड़े पहन कर बाहर घूमने जायें, बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ायें। तो बताइए क्या फैक्ट्री में काम करते करते ये सब कर पाओगे?"

उसके सामने बैठे दोनों लोग सोच में पड़ गये। उनमें से एक बोला- "नहीं"

"देखिए ये सब करने के लिये आपको मेहनत के साथ-साथ अकल से ही काम लेना होगा। आपको आयुर्वेदा

(पेज 19 पर जारी)

हर मोर्चे पर नाकाम मोदी सरकार, चन्द्रयान पर चढ़कर कर रही चुनाव प्रचार!

● गायत्री भारद्वाज

देश में पिछले 10 साल के फ़ासीवादी मोदी राज में बेरोज़गारों की तादाद 30 करोड़ पहुँच गयी। इस दौरान 7 लाख लोगों को रोज़गार मिला, लेकिन 5 करोड़ से भी ज़्यादा लोगों की नौकरी नोटबन्दी और कुप्रबन्धित लॉकडाउन में दौरान चली गयी। महँगाई का आलम यह है कि आम आदमी की खाने की तश्तरी से दाल, सब्जियाँ, सलाद आदि ग़ायब हो चुके हैं। मज़दूर आबादी एक पोषणयुक्त भोजन तक नहीं खा पा रही है। स्त्रियों के विरुद्ध अपराध में ऐसी बढ़ोत्तरी कभी हुई ही नहीं थी और मोदी सरकार के राज में और कोई उम्मीद ही क्या की जा सकती है, जब ख़ुद भाजपा के नेता-मन्त्री बलात्कारों को अंजाम देने में देश के गुण्डों-लफंगों-अपराधियों की अगुवाई कर रहे हैं! अब तो हालत यह है कि किसी रास्ते से किसी भाजपा नेता-मन्त्री के गुज़रने की ख़बर होती है, तो आस-पास औरतें किसी सुरक्षित जगह चली जाती हैं, अपनी बच्चियों को घरों में खींच लाती हैं। मोदी का 'बेटी बचाओ' का नारा 'भाजपाइयों से बेटी बचाओ' में तब्दील हो चुका है।

देश में मोदी सरकार और ख़ुद नरेन्द्र मोदी इस क़दर कभी अलोकप्रिय नहीं हुए थे। कर्नाटक में शर्मनाक हार मिलने के बाद और अब छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश और यहाँ तक कि राजस्थान तक से भाजपा को बुरी ख़बरें मिल रही हैं। भाजपा के रंगा-बिल्ला पहली बार चिन्तित हैं। ऐसे में, मोदी सरकार निम्न विकल्पों का इस्तेमाल करने पर विचार कर सकती है: आतंकी हमले आदि के आधार पर अन्धराष्ट्रवाद की लहर फैलाना, दंगे-फ़साद करवाकर वोटों का साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करना और ये सब न काम करे तो समूची चुनाव प्रक्रिया को ही बेअसर कर देना, मसलन, ईवीएम आदि का खेल खेलकर जनादेश को चुरा लेना। लेकिन इन सबके बारे में भी लोगों में भाजपा और मोदी के बारे में हुए हुक्मरानों के आपसी अन्तरविरोधों के कारण हुए तमाम खुलासों के कारण काफ़ी जागरूकता आ गयी है। मसलन, कई राज्यों के भूतपूर्व राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने पहले ही बता दिया कि चुनावों में अपनी हालत ख़राब देखने पर सत्ता को हथियाने के लिए मोदी-शाह की अगुवाई में भाजपा किसी भी हद तक जा सकती है। कोई ताज्जुब नहीं होगा कि कोई नया पुलवामा हो जाये, राम मन्दिर पर कोई हमला हो जाये, आदि। ऐसे में, इस तरह का खेल खेलने से भी देश की जनता में कितना असर होगा, इसको लेकर भाजपा का नेतृत्व सशंकित हो चला है।

नतीजतन, हताशा और घबराहट में भाजपा और नरेन्द्र मोदी हर चीज़ का ही चुनाव प्रचार में इस्तेमाल कर रहे हैं। किसी नाले पर बने पुल का उद्घाटन करने से लेकर, जी-20 सम्मेलन के भारत में आयोजित होने तक, किसी रेल को झण्डी दिखाने से लेकर गोदी मीडिया में झूठा प्रोपगैण्डा कर अपनी झूठी वैश्विक छवि बनवाने तक, नरेन्द्र मोदी वाकई 18 घण्टे काम कर रहे हैं! मोदी सरकार ने अपने झूठे प्रचार पर ही अरबों रुपये बहाए हैं, जो अगर जनकल्याण के कामों में लगते तो देश की ग़रीब मेहनतक़श जनता को कुछ फ़ौरी राहत तो मिल ही जाती। लेकिन जब जनता के पक्ष में कोई काम ही न किया हो, तो झूठे प्रचार पर अरबों रुपये तो बहाने ही पड़ते हैं!

अब नरेन्द्र मोदी को चुनाव प्रचार के लिए एक नया रथ मिल गया है: चन्द्रयान-3। आज तक किसी भी प्रधानमन्त्री ने देश के अन्तरिक्ष कार्यक्रमों की किसी भी उपलब्धि पर अपना इस कदर शर्मनाक और सस्ता चुनाव प्रचार करने का प्रयास नहीं किया है। चाहे पहली बार राकेश शर्मा नामक अन्तरिक्ष यात्री को अन्तरिक्ष में भेजना रहा हो, या अपने सैटेलाइटों को परिधि में स्थापित करना रहा हो, भारत के वैज्ञानिक श्रमिकों व वैज्ञानिकों ने पहली बार कोई उपलब्धि हासिल की हो, ऐसा नहीं है। पहले भी वैज्ञानिक मज़दूरों व वैज्ञानिकों के प्रयासों से तमाम उपलब्धियाँ हासिल हुई हैं और एक वैज्ञानिक उपलब्धि के कन्धे पर खड़े होकर ही अगली वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हासिल होती हैं। चन्द्रयान कार्यक्रम तो मनमोहन सिंह सरकार के समय ही शुरू हो गया था! इस बार की सफलता के पीछे दो बार की असफलता का भी हाथ है। असफलता ही सबसे बड़ी शिक्षक होती है, वही सफलता की जननी होती है। वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक श्रमिकों ने अपना काम किया, पहले की असफलता से सीखा और आगे चलकर सफलता हासिल की। यह भी ग़ौरतलब है कि जिस एचईसी (हेवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन) के मज़दूरों ने चन्द्रयान-3 को बनाया था, उनको 17 माह से मोदी सरकार ने तनख्वाह तक नहीं दी है! लेकिन चन्द्रयान-3 की सफलता का क्रेडिट लेने के लिए मोदी जी तत्काल कैमरे के सामने प्रकट हो जाते हैं, माना चन्द्रयान-3 उन्होंने ही बनाया हो!

इस प्रकार की वैज्ञानिक उपलब्धि में मोदी जी कहाँ से आ जाते हैं? लेकिन चन्द्रयान के चाँद पर उतरने से कुछ मिनटों पहले ही मोदी जी स्क्रीन पर प्रकट हो जाते हैं, वैज्ञानिकों को बीच-बीच में आधी स्क्रीन पर दिखाया जाता है, और मोदी जी छा जाते हैं! चन्द्रयान के उतरते ही मोदी जी का भाषण शुरू हो जाता है। मोदी जी प्लास्टिक का झण्डा लेकर आँखें मटका-मटकाकर झण्डा हिलाने लगते हैं! सारे टीवी स्क्रीनों पर यह छवि छा जाती है। गोदी मीडिया अपने अश्लील प्रचार में लग जाता है कि मोदी जी ने चाँद फ़तह कर लिया, पाकिस्तान कितना दुखी है, वगैरह; हिन्दुत्व राजनीति के कई चोमू चवन्नी चाँद पर "हिन्दू राष्ट्र" बनाने की माँग करने लगते हैं और एक ऐसी हास्यास्पद नौटंकी चालू होती है, जो पूरी दुनिया में शायद हमारे देश के दक्षिणपंथी और फ़ासीवादी ही करते हैं!

तब से अब तक रोज़ गोदी मीडिया के चैनलों पर चन्द्रयान-3 से जुड़ी ख़बरें दिखाकर मोदी का चुनाव प्रचार करवाया जा रहा है। लेकिन इन सारे प्रयासों के बावजूद व्यापक जनता में चन्द्रयान-3 की लैण्डिंग को मीडिया में मोदी द्वारा हाईजैक करने के प्रयास पर चिढ़ ही पैदा हुई है। एक वीडियो वायरल हुआ है जिसमें मोदी के स्क्रीन पर आते ही एक व्यक्ति उसे हटाने और वैज्ञानिकों को दिखाने को बोलता है। जब तक इसरो के वैज्ञानिकों को दिखलाया जा रहा था तब तक इसरो के ऑफिशियल चैनल पर चन्द्रयान की लैण्डिंग के अपडेट देखने वालों की तादाद 80 लाख से ऊपर थी; जैसे ही मोदी प्रकट हुए वैसे ही इसमें से आधे से अधिक लोगों यानी लगभग 60 प्रतिशत लोगों ने चैनल देखना ही छोड़ दिया! यानी, लोग अब इस शक्ल को भी नहीं देखना चाहते और सामने आ जाने पर उनके दिमाग़ में जो पहला भाव आता है वह है चिढ़ और गुस्सा।

इसलिए मोदी सरकार चन्द्रयान-3 का अपने 2024 के लोकसभा चुनाव प्रचार में इस्तेमाल का कितना भी प्रयास करे, वह कामयाब नहीं होने वाला है। दिखावटी शोशेबाज़ी कुछ समय तक कारगर होती है। लेकिन जब व्यापक मेहनतकश जनता बेहाली-बदहाली में पड़ी हो, तो चन्द्रयान-3 के चाँद पर उतरने से वह किसी झूठी देशभक्ति की लहर में नहीं बहती और न ही ही अपने असल मुद्दे भूलती है। हाँ, मध्यवर्ग की अलग बात है। और अगर हम भारत की मध्यवर्ग की बात कर रहे हों, तब तो निश्चित ही अलग बात है क्योंकि राजनीतिक रूप से इतना मूर्ख, अनपढ़ और अज्ञानी मध्यवर्ग दुनिया शायद कुछ ही देशों में हो। यह त्रिशंकु की तरह बीच में लटका होता है। तय नहीं कर पाता कि उसकी वफ़ादारी कहाँ पर है। जहाँ तक वह आर्थिक अनिश्चितता और असुरक्षा से बिलबिलाता है, वहाँ वह सरकार और व्यवस्था के विरुद्ध दो शब्द बोलता है। लेकिन जैसे ही उसे जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अन्धराष्ट्रवाद में शासक वर्ग बहाने की कोशिश करता है, वैसे ही उसका अच्छा-ख़ासा हिस्सा इसमें बह भी जाता है। विशेष रूप में, उच्च व मध्य मध्यम वर्ग में ऐसा बर्ताव देखा जा सकता है।

लेकिन सिर्फ मध्यवर्ग के बूते भाजपा चुनाव जीतने को लेकर आश्वस्त नहीं हो सकती। मध्यवर्ग वाचाल वर्ग होता है और सामान्य स्थितियों में कई बार यह माहौल सेट करने में एक भूमिका निभाता है और आम मेहनतकश आबादी भी अक्सर उस माहौल के अनुसार अपने राजनीतिक पक्ष को तय करती है। लेकिन यह असामान्य स्थितियों में नहीं होता जब देश का बहुसंख्यक मेहनतकश अवाम अभूतपूर्व बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी और भुखमरी का सामना कर रहा हो। पहले भी ऐसा हुआ है। मसलन, 2004 के चुनावों में। पूरे देश में मध्यवर्ग में भाजपा का चुनाव प्रचार बेकदर हावी था। यही वर्ग सबसे ज़्यादा बकबक भी करता है, इसलिए ऐसा लग रहा था कि देश में आडवाणी के चुनाव जीतने की हवा है। लेकिन नतीजा क्या रहा, यह सबको मालूम है। उस समय भी मीडिया का बड़ा हिस्सा भाजपा की जीत के पूर्वानुमान पेशकर जनता का मूड बनाने का प्रयास कर रहा था। निश्चित ही, कांग्रेस का शासन भी पूँजीपति वर्ग का ही शासन था और किसी क्रान्तिकारी विकल्प की गैर-मौजूदगी में जनता का 60-70 फ़ीसदी हिस्सा इस या उस पूँजीवादी चुनावी पार्टी को ही वोट देती है। उसे भी अपने जीवन में किसी गुणात्मक बदलाव की उम्मीद नहीं होती और अक्सर वह वोट का इस्तेमाल जा रही सरकार को दण्डित करने के लिए करती है।

निश्चित ही अभी यह नहीं कहा जा सकता कि नरेन्द्र मोदी की 2024 के चुनावों में वही हालत होगी, जो वाजपेयी सरकार और अगला प्रधानमन्त्री बनने को लपलपाये आडवाणी का हुआ था। लेकिन हर दिन के साथ मोदी सरकार की स्वीकार्यता घट रही है, यह एक ऐसा तथ्य है जिससे अब गोदी मीडिया भी इंकार नहीं कर पा रहा है। वह कह रहा है कि भाजपा की सीटें कम होंगी, कांग्रेस की बढ़ेंगी लेकिन फिर भी भाजपा जीत जायेगी! भाजपा द्वारा वित्तपोषित तमाम चुनाव सर्वेक्षण यही बोल रहे हैं और गोदी मीडिया के ज़रिये उनका प्रचार कर मूड बनाने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन इनका भी अपेक्षित असर नहीं हो पा रहा है।

इसलिए जनता को तैयार रहना चाहिए। 2024 में चुनावों के पहले भाजपा को अगर हार का डर सतायेगा, वह ईवीएम आदि के इस्तेमाल के बावजूद जीत के प्रति आश्वस्त नहीं होगी, तो जैसा कि सत्यपाल मलिक ने अन्देशा जताया है, वह किसी भी हद तक जा सकती है। कोई बड़ा दंगा, इत्तेफ़ाकन उसी समय कोई बड़ा आतंकवादी हमला, आदि। यह याद रखने की ज़रूरत है कि हमें अपने असल मुद्दों पर ही केन्द्रित रहना है: रोज़गार और शिक्षा का सवाल, श्रम अधिकारों का सवाल, आवास और चिकित्सा का सवाल, सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा का सवाल। याद रखें: बाकी सारी बातें मेहनतकश वर्गों के लिए बेकार हैं।

सुकून की तलाश में एक दिन

(पेज 18 से आगे)

कम्पनी से जुड़ना होगा। क्यों जुड़ना होगा ये समझिये। हमारी कम्पनी से आप जुड़कर अपने साथ तीन लोगों को और जोड़िये और तब आपको दस हज़ार रुपये मिलेंगे, जब वह तीन और तीन लोगों को जोड़ेंगे तब आपको बीस हज़ार मिलेंगे। तो सोचिए बैठे-बैठे आपको बढ़कर पैसे मिलने लगेंगे, तभी लाइफ में सक्सेस मिलेगी। देखिये यह शर्मा जी हैं।" एक फ़ोटो निकालकर बोला

"आप लोगों की तरह ही छोटा-मोटा काम करते थे और देखिये हमारी कम्पनी से जुड़ने के बाद इनके पास दो साल में ह्युंडई की कार है। यह देखिये ये झा जी हैं। पहले झुग्गी में रहते थे अब अपना फ्लैट है। यह सब आपके पास भी हो सकता है।"

सामने बैठे दोनों एक दूसरे की आँखों में देखने लगे। तभी उनमें से एक ने बड़ी मासूमियत के साथ पूछा- "आप तो ई रिक्शा से आये हैं, आपके पास नहीं है ये सब?"

काला कोर्ट पहने आदमी थोड़ा सोच में पड़ गया, पर चेहरे पर बिना कोई शिकन दिखाये जवाब दिया : "मैं अभी नया-नया जुड़ा हूँ। यह मेरा कार्ड है, आप रख लीजिये जब समझ आयेगा फ़ोन करना।" दाल गलते न देख उसने अपना झोला उठाया और निकल गया।

मन्दिर के लाउडस्पीकर पर एक बार फिर घोषणा होती है :

"सभी राम भक्तों से निवेदन है इस बुधवार को मन्दिर निर्माण की रैली में ज़रूर आयें और रामलला का आशीर्वाद पायें।" घोषणा ख़त्म होते ही भजन और तेज़ आवाज़ में बजने लगा, जो फैलते-फैलते बेसुरी होती जा रही थी: "श्री राम जानकी बैठे हैं मेरे सीने में! राम लला हम आयेंगे, मन्दिर वहीं बनायेंगे।"

डूबते सूरज की लालिमा अपना चरम पर थी। आज आख़िरी बार सूर्य अपनी ओर से किरणें बिखरने की कोशिश कर रहा था। इस कारण सारा आसमान में हल्का गुलाबी सा प्रतीत होने लगा। इस वक्त हवा कुछ ठहरी हुई थी।

5

आख़िर सूरज डूब गया, तेज़ हवाओं ने सब कुछ अपने आगोश में ले लिया। अँधेरा हर तरफ़ फैल चुका था। पूरे पार्क में सन्नाटा पसर गया, कहीं कोई नहीं दिखाई दे रहा था। लाउडस्पीकर का शोर अभी ख़त्म नहीं हुआ, बस अभी उसकी आवाज़ धीमी थी। सब लौट गये फिर अपने ठिकानों में जहाँ अगले दिन उन्हें सुबह से रात तक, अपने हाड मांस को गलाना था ताकि अपना व परिवार का पेट का गड्ढा भर सके। यही पहिया घूम रहा है दिन, रात, महीनों, सालों से। इसी में एक दिन निकाल कर आते हैं सभी सुकून की तलाश करते हुए, पर अन्त में रह जाता है तो सिर्फ़ अँधेरा जो सब कुछ अपने अन्दर समा लेना चाहता है।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

अपराध-सम्बन्धी क़ानूनों में बदलाव के पीछे मोदी सरकार की असल मंशा क्या है?

अपनी बढ़ती हुई अलोकप्रियता से बौखलाये फ़ासिस्ट हुक्मरान अब हर प्रकार के प्रतिरोध को और भी सख़्त क़ानूनों का सहारा लेकर कुचलना चाहते हैं!

● **शिवानी**

मोदी सरकार द्वारा आनन-फ़ानन में इस बार संसद सत्र के आख़िरी दिन भारतीय दण्ड संहिता (आयीपीसी), दण्ड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) और भारतीय साक्ष्य अधिनियम (एविडेंस एक्ट) की जगह इन विषयों से सम्बन्धित तीन नये विधेयक प्रस्तुत किये गये। जो तीन विधेयक पेश किये गये हैं वे हैं- भारतीय न्याय संहिता, 2023 (अपराधों से सम्बन्धित प्रावधानों को समेकित और संशोधित करने के लिए), भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (दण्ड प्रक्रिया से सम्बन्धित क़ानून को समेकित और संशोधित करने के लिए) और भारतीय साक्ष्य विधेयक, 2023 (सुनवाई के लिए साक्ष्य के सामान्य नियमों और सिद्धान्तों को समेकित करने और प्रदान करने के लिए)।

गृह मंत्री अमित शाह ने इन विधेयकों के मसौदे को पेश करते हुए दावा किया कि मौजूदा क़ानून "उपनिवेशवाद की विरासत" हैं और "ग़ुलामी की मानसिकता" के प्रतीक हैं इसलिए इन्हें आज की स्थितियों के अनुकूल बनाये जाने की आवश्यकता है। वैसे तो अमित शाह के इस दावे को हलक़ से नीचे उतार पाना किसी भी सामान्य व्यक्ति के लिए काफ़ी मशक़्क़त वाला काम है क्योंकि "औपिवेशिक विरासत" की बात ऐसे लोगों के मुँह से सुनना थोड़ा अजीब लगता है जिनका पूरा इतिहास ब्रिटिश औपिवेशिक शासकों से प्रेम-प्रसंग चलाने का रहा हो, उनके सामने माफ़ीनामे लिखने का रहा हो, उनके लिए मुख़बिरी तक करने का रहा हो। इसलिए अमित शाह के इस दावे को किनारे रखते हुए सोचने वाली अहम बात यह है कि **मोदी सरकार द्वारा अचानक इतनी हड़बड़ी में इन क़ानूनों में बदलाव क्यों प्रस्तावित किये जा रहे हैं, जिनके साल के अन्त तक क़ानूनी रूप ले लेने की सम्भावना है।** दरअसल, इन क़ानूनों के आधुनिकीकरण या "भारतीयकरण" के नाम पर फ़ासीवादी मोदी सरकार अपने ख़िलाफ़ उठने वाले हर प्रतिरोध से और सख़्ती से निपटने की तैयारी में है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत में अपने वर्तमान स्वरूप में मौजूद आपराधिक दण्ड संहिताएँ किसी भी दृष्टि से जनपक्षधर या जनवादी नहीं हैं और उत्तर-औपनिवेशिक भारतीय राज्यसत्ता द्वारा, मूलतः और मुखयतः, चन्देक बदलावों के साथ औपनिवेशिक सत्ता से उधार ले ली गयी थीं। इनका ग़ैर-जनवादी दमनकारी चरित्र आज़ादी के तत्काल बाद ही स्पष्ट होता चला गया। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ये सभी क़ानून पूर्णतः संविधान-सम्मत भी हैं। लेकिन जिस संविधान को बनाने वाली संविधान सभा का चुनाव उस वक़्त की कुल वयस्क आबादी के मात्र 11.5 प्रतिशत हिस्से से बने निर्वाचन मण्डल ने किया हो, जो अधिकतर सम्पत्तिधारी वर्गों के ही प्रतिनिधि थे, उससे जनवादी होने की उम्मीद करना ही बेमानी है। इसलिए ऐसा कोई मुग़ालता पालना कि मौजूदा आपराधिक क़ानून किसी भी मायने में जनता के अधिकारों की हिफ़ाज़त करते थे, बहुत बड़ी भूल होगी। तो फिर मोदी सरकार पहले से ही पर्याप्त जन-विरोधी इन दण्ड संहिताओं को बदलने क्यों जा रही है?

इसका कारण मोदी सरकार की बढ़ती हुई अलोकप्रियता है जो बेरोज़गारी से लेकर महँगाई और भ्रष्टाचार से लेकर साम्प्रदायिक तनाव और हिंसा बढ़ाने के मामले में पिछले नौ सालों में अब तक के सभी कीर्तिमान ध्वस्त करके अव्वल साबित हुई है और इस कारण से 2024 में अपनी सम्भावित चुनावी हार से बौखलाई भी हुई है। इसीलिए यह अनायास नहीं है कि 2024 के चुनावों के मद्देनज़र प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी कभी चन्द्रयान-3 की सवारी गाँठकर अपना चेहरा चमका रहे हैं तो कभी ऐन रक्षा बन्धन के मौक़े पर "बड़े भाई होने का कर्तव्य निभाते हुए" सिलेंडर की क़ीमत 200 रुपये कम करके "अपनी बहनों" को राखी का तोहफ़ा दे रहे हैं! इसके अलावा साम्प्रदायिक उन्माद और अन्धराष्ट्रवाद की लहर उठाकर भी जनता को आपस में ही लड़वा मारने की साज़िशें रची जा रही हैं जिसका ताज़ा उदाहरण हरियाणा के नूंह-मेवात समेत अन्य इलाक़ों में संघियों द्वारा साम्प्रदायिक दंगे भड़काने की कोशिश थी। लेकिन अब देश की आम मेहनतकश आबादी और मध्य वर्ग का एक हिस्सा भी इस बात को समझ रहा है कि इस पूरी मशक़्क़त के पीछे असल में 2024 का लोकसभा चुनाव है जिसमें अपनी पक्की जीत को लेकर भाजपा और संघ परिवार काफ़ी सशंकित है। तो एक तरफ़ मोदी सरकार कुछेक खैराती कल्याणवादी क़दम उठाकर अपनी बढ़ती हुई अलोकप्रियता को एक हद तक नियंत्रित करना चाह रही है, लेकिन दूसरी तरफ़ वह यह भी समझती है कि यह "कल्याणवाद" वह ज़्यादा कर नहीं पायेगी और न ही कर सकती है। आख़िर देश के पूँजीपतियों और धन्ना-सेठों ने भाजपा और मोदी को यह करने के लिए तो सत्ता में बिठाया नहीं था!

इसलिए ही देश की क़ानून व्यवस्था को फ़ासीवादी हुक्मरान अब और चाक-चौबन्द करने पर आमादा हैं ताकि किसी भी क़िस्म के जनाक्रोश को पनपने से पहले ही कुचल देने के इन्तज़ामात पहले से ही मौजूद हों। हालाँकि भारतीय फ़ासीवादी अब तक पूँजीवादी जनवाद के दायरे और बुर्जुआ संवैधानिक फ़्रेमवर्क के भीतर ही अपने फ़ासीवादी मंसूबों को पूरा करने में सफल रहे हैं और इसलिए उन्हें "जनतंत्र" और "संविधान" के खोल को उतार फेंकने की ज़रूरत अब तक नहीं पड़ी, जोकि इक्कीसवीं सदी के फ़ासीवादी उभार की ख़ासियत भी है। बुर्जुआ जनतंत्र और संवैधानिक व्यवस्था अन्दर से ख़ुद ही इतनी क्षरित और विघटित हो चुकी है कि फ़ासीवादियों को भी उसे दरकिनार करने की ज़रूरत आम तौर पर महसूस नहीं होती है। हालाँकि इस बात की सम्भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि जैसे-जैसे मोदी सरकार और भाजपा की अलोकप्रियता बढ़ रही है और जैसे-जैसे इन्हें अपनी चुनावी हार की आशंका सच में तब्दील होते दिखेगी, वैसे-वैसे फ़ासीवादी भाजपा को इस "जनवादी" खोल को भी उतार फेंकने में शायद ही कोई गुरेज़ हो। आयीपीसी, सीआरपीसी व एविडेंस एक्ट में प्रस्तावित बदलावों को हमें इसी परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है।

प्रस्तावित क़ानूनी बदलावों में जो सबसे अहम बदलाव है और जिसकी सबसे ज़्यादा चर्चा हो रही है वह है राजद्रोह (धारा 124 ए आयीपीसी) के क़ानून का निरस्त किया जाना। लेकिन यदि आप इस बात पर ख़ुशी मनाने का विचार कर रहे हैं तो थोड़ा ठहर जायें क्योंकि इसकी जगह जो क़ानून आ रहा है वह मौजूदा राजद्रोह के क़ानून से भी बदतर है! यानी नयी बोतल में सिर्फ़ पुरानी शराब नहीं उड़ेली गयी है बल्कि उससे कहीं ज़्यादा ज़हरीली और ख़तरनाक शराब पेश की जा रही है! नये क़ानून के मुताबिक़ "भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालना" अपराध होगा। आयीपीसी को प्रतिस्थापित करने वाले भारतीय न्याय संहिता, 2023, के भाग VII का शीर्षक ही है "राज्य के विरुद्ध अपराध" जिसकी धारा 150 "भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालने वाले कृत्यों" को अपराध मानती है।

धारा 150 में कहा गया है-

"जो कोई भी, उद्देश्यपूर्वक या जानबूझकर, बोले गये या लिखे गये शब्दों से, या संकेतों द्वारा, या दृश्य प्रतिनिधित्व द्वारा, या इलेक्ट्रॉनिक संचार द्वारा या वित्तीय साधनों के उपयोग से, या अन्यथा, अलगाव या सशस्त्र विद्रोह या विध्वंसक गतिविधियों को उत्तेजित करता है या उत्तेजित करने का प्रयास करता है या अलगाववादी गतिविधियों की भावनाओं को प्रोत्साहित करता है या भारत की सम्प्रभुता या एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालता है; या ऐसे किसी भी कार्य में शामिल होता है या करता है, उसे आजीवन कारावास या कारावास से दण्डित किया जायेगा, जिसे सात साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।»

अब ज़रा इसकी तुलना आयीपीसी की धारा 124 ए, जो वर्तमान में राजद्रोह के अपराध को परिभाषित करती है, से करें। धारा 124 ए निम्न प्रावधान करती है :

"जो कोई भी बोले गये या लिखे गये शब्दों से, या संकेतों द्वारा, या दृश्य प्रतिनिधित्व द्वारा, या अन्यथा, भारत में क़ानून द्वारा स्थापित सरकार के प्रति घृणा या अवमानना लाता है या लाने का प्रयास करता है, या उत्तेजित करता है या असन्तोष पैदा करने का प्रयास करता है, उसे आजीवन कारावास से दण्डित किया जायेगा, जिसमें जुर्माना जोड़ा जा सकता है, या कारावास, जिसे तीन साल तक बढ़ाया जा सकता है, जिसमें जुर्माना जोड़ा जा सकता है, या जुर्माने से दण्डित किया जा सकता है।"

आप देख सकते हैं कि नये क़ानून के अन्तर्गत "अलगाव उकसाना", "सशस्त्र विद्रोह", "विध्वंसक गतिविधियाँ" और "अलगाववादी गतिविधियों की भावनाओं को प्रोत्साहित करने" जैसे कृत्यों का ज़िक्र स्पष्ट तौर पर किया गया है। साथ ही, यह उन कृत्यों को भी सन्दर्भित करता है जो "भारत की सम्प्रभुता या एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालते हैं", हालाँकि यह वाक्यांश ही पारिभाषिक रूप से इतना व्यापक और अस्पष्ट है कि इसकी कई व्याख्याएँ सम्भव है और इस रूप में राज्य या सरकार अपने ख़िलाफ़ होने वाले किसी भी प्रकार के विरोध को इस श्रेणी में रखने का प्राधिकार रखती है। इसका किस हद तक फ़ासीवादी सत्ता द्वारा अपने राजनीतिक विरोधियों के ख़िलाफ़ दुरुपयोग किया जा सकता है, हम सहज अनुमान लगा सकते हैं। जहाँ तक सज़ा का सवाल है तो नये क़ानून में इसे और अधिक कठोर बना दिया गया है।

इसके अलावा नये क़ानून में अपने जायज़ अधिकारों के लिए विरोध प्रदर्शन करना या उनके लिए एकजुट होकर आवाज़ उठाना तक आंतकवादी गतिविधि घोषित किये जाने के प्रावधान मौजूद हैं। आम तौर पर ही नये बदलाओं ने राज्य द्वारा सज़ा दिये जाने के दायरे को विस्तारित कर दिया गया है। मसलन, धारा 111 के अन्तर्गत यह लिखा गया है कि किसी व्यक्ति ने आंतकवादी कृत्य किया है यदि वह भारत में या विदेश में भारत की एकता, अखण्डता और सुरक्षा को धमकी देने, जनसाधारण या उसके किसी भी हिस्से को डराने, धमकाने या सरकारी व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने की मंशा से निम्नलिखित कोई कार्य करता है, या किसी सम्पत्ति की क्षति या विनाश के कारण क्षति या हानि, समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक किन्हीं आपूर्तियों या सेवाओं का विनाश, सरकारी या लोक सुविधा, लोकस्थान या निजी सम्पत्ति का विनाश करता है। यानी अब कहीं भी, देश में या देश के बाहर, सरकार की आलोचना आतंकवादी कार्यवाई घोषित की जायेगी!

याद दिला दें कि आतंकवादी गतिविधियों से निपटने के लिए भारतीय क़ानून व्यवस्था में पहले ही कई अलग क़ानून और प्रावधान हैं, इसलिए इसे एक नयी धारा के तहत शामिल करने का कोई तुक नहीं बनता था। निश्चित तौर पर, यह प्रावधान जन प्रतिरोध और राजनीतिक विरोध को ही लक्षित करता है और विरोध प्रदर्शनों को *क्रिमिनलाइज़* (अपराधीकृत) करता है और इन्हें ही "आंतकवाद" की श्रेणी में रखता है। साथ ही, **नये क़ानून के तहत आवश्यक सेवाओं में लगे कर्मचारी जैसे डॉक्टर, नर्स, रेलवे कर्मचारी, आंगनवाड़ीकर्मी, आशाकर्मी आदि अब हड़ताल या प्रदर्शन तक नहीं कर पायेंगे क्योंकि इन्हें आंतकवादी गतिविधि घोषित किया जा सकेगा!** दरअसल एक बौखलायी हुई फ़ासिस्ट सत्ता हर क़िस्म के विरोध को भ्रूण में ही ख़त्म कर देने के क़ानूनी इन्तज़ाम कर रही है।

नये क़ानूनों के अन्तर्गत हिरासत सम्बन्धी प्रावधान 15 दिन की वर्तमान सीमा से परे जाकर 'पुलिस कस्टडी' को 60 से 90 दिन तक बढ़ाये जाने की इजाज़त देते हैं। यह एक प्रकार से पुलिस प्रशासन को असीमित शक्तियाँ देने के समान है जो पुलिस को किसी भी व्यक्ति को 3 महीने तक हिरासत में रखने का अधिकार देती है। अभी ही वर्तमान क़ानूनों के तहत पुलिस हिरासत की जो असलियत है, वह बेहद चिन्ताजनक है; नये क़ानूनों के अमल में आने के बाद तो यह और भयंकर साबित होगी और अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए फ़ासीवादी सत्ता द्वारा इसका जमकर इस्तेमाल किया जायेगा। ज़ाहिरा तौर पर, अब पुलिस हिरासत में ज़मानत मिलना और भी मुश्किल हो जायेगा। ज़रा सोचिए! जब अभी ही सालों तक बिना ज़मानत के लोगों को जेलों के भीतर रखा जाता है, तो नये प्रावधानों के बाद स्थिति कितनी भीषण होगी?

वैसे तो इन तीनों ही नये आपराधिक क़ानूनों में "औपनिवेशिक प्रभाव से मुक्त करने" के नाम पर शाब्दिक अर्थों में ज़्यादा नया कुछ पेश नहीं किया गया है और अधिकतर स्थानों पर पुराने क़ानूनों की भाषा और शब्दावली ही बरक़रार रखी गयी है, लेकिन जहाँ कहीं भी कुछ नया जोड़ा गया है वह कहीं अधिक दमनकारी और जनविरोधी है

(अन्दर पेज 2 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016